संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

वर्ष : १०
अंक : ८३
नवम्बर १९९९

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पूज्य बापूजी का स्वागत करते हुए स्नेहसहित आशीर्वाद पाया था कि : **"दुबारा-दुबारा प्रधानमंत्री बनो।"** पूज्यश्री के ये वचन अब सत्य साबित हुए। अटलजी लखनऊ के सत्संग में दो घण्टे ध्यान में सराबोर रहे थे।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ८३
९ नवम्बर १९९९
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

आश्रम विषयक जानकारी
Internet पर उपलब्ध है : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

जीवन की सहजता

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जो सहज जीवन जीता है, उसका जीवन खूब सरल एवं आनंद से परिपूर्ण होता है। मूर्ख एवं अहंकारी लोग जीवन को जटिल बना देते हैं। उनका जीवन अपने तथा औरों के लिए समस्या बन जाता है।

तीन प्रकार के लोग होते हैं : एक वे होते हैं जो 'यह करूँ... यह न करूँ... यह छोड़ूँ... यह पकड़ूँ...' ऐसी मान्यता रखते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो कुछ भी करके अपने को बड़ा दिखाना चाहते हैं। दूसरों को नीचा दिखाकर, दूसरों का शोषण करके भी स्वयं बड़े बनना चाहते हैं। ऐसे लोगों का जीवन उलझा हुआ होता है अथवा अधमतापूर्वक नष्ट होता है। तीसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो अपना व्यवहार इस ढंग से करते हैं कि जहाँ हैं, जैसे हैं, ठीक हैं। व्यवहार में अनाग्रहपूर्ण बुद्धि रखकर जीवन के रहस्य को, जीवन के छुपे हुए खजाने को प्राप्त करने में अपना जीवन बिताते हैं, उनका जीवन सार्थक है।

जिसके जीवन में हृदय की विशालता होगी, शुद्ध प्रेम होगा, उसका जीवन खिल उठेगा, सहज आनंदस्वभाव से परितृप्त हो उठेगा।

जिसे कुछ बनने की, कुछ करने की इच्छा होती है वे तो किसी-न-किसी प्रकार के आग्रह से घिरे ही रहते हैं। कोई अपने को तपस्वी मानता हो। उसके पास यदि आप जाओ तो वह आपको कहेगा कि 'बीड़ी-सिगरेट छोड़ दो, मांस-मछली-अण्डे छोड़ दो...।' आपने यह सब छोड़ा हुआ है तो कहेगा कि 'लहसुन, प्याज छोड़ दो।' आप ये छोड़कर और आगे बढ़ना चाहोगे तो कहेगा कि 'तीन बार भोजन करते हो तो दो बार ही करो।' आप दो बार खाने लगोगे तो कहेगा कि 'अब एक वक्त का भोजन बंद कर दो।' एक बार खाते होगे तो कहेगा कि 'नमक बंद कर दो।' आप वह भी बंद कर दोगे तो कहेगा कि 'अनाज छोड़ दो। अब फलाहार करने लगो।' छोड़ो... छोड़ो... छोड़ते जाओ... छोड़ते जाओ... फिर कहेगा कि 'फल खाते हो, तपस्वी हो तो अब संसार में क्या रहना ? पत्नी और बच्चों को भी छोड़ दो।' मान लो, वह भी छूट गया तो कहेगा कि 'सब छूट गया, अब वस्त्रों को भी छोड़ दो। कौपीन पहनो।'

जीवन जीने का यह एक मार्ग है : त्याग... त्याग... त्याग...

जिन्होंने सब छोड़ दिया है, जो केवल कौपीन पहनते हैं, फलाहार अथवा भिक्षा पाते हैं एवं ईश्वर का चिंतन करते हैं उनके जीवन में भी यदि सत्संग नहीं है तो कोई दिव्य संगीत नहीं होता। जीवन में जो दबा हुआ होता है, वह कभी-कभार समय पाकर प्रगट हो जाता है कि 'तू मुझे नहीं जानता, मैं कबसे घर-बार छोड़कर यहाँ बैठा हूँ ? संसारी लोग क्या जानें कि भजन क्या होता है ? तपस्या क्या होती है ? मैं लहसुन नहीं खाता, प्याज नहीं खाता... मैंने बाल-बच्चों को छोड़ दिया, पत्नी को छोड़ दिया... मैं कोई जैसा-तैसा साधु थोड़े ही हूँ ? मेरे आगे तू क्या डींग मारता है ?'

अच्छा है, ठीक है कि छोड़ पाये हो, लेकिन छोड़कर आने की याद चित्त में अभी तक बनी हुई है। यह उचित नहीं है। अपने अहंकार को सजाने के लिए जो कुछ करते हो वह अनुचित है। आपके पास चीज-वस्तुएँ, रुपये-पैसे होना कोई खराब बात नहीं है लेकिन दूसरों का शोषण करके, दूसरों

जीवन की सहजता

✽ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✽

जो सहज जीवन जीता है, उसका जीवन खूब सरल एवं आनंद से परिपूर्ण होता है। मूर्ख एवं अहंकारी लोग जीवन को जटिल बना देते हैं। उनका जीवन अपने तथा औरों के लिए समस्या बन जाता है।

तीन प्रकार के लोग होते हैं : एक वे होते हैं जो 'यह करूँ... यह न करूँ... यह छोड़ूँ... यह पकड़ूँ...' ऐसी मान्यता रखते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो कुछ भी करके अपने को बड़ा दिखाना चाहते हैं। दूसरों को नीचा दिखाकर, दूसरों का शोषण करके भी स्वयं बड़े बनना चाहते हैं। ऐसे लोगों का जीवन उलझा हुआ होता है अथवा अधमतापूर्वक नष्ट होता है। तीसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो अपना व्यवहार इस ढंग से करते हैं कि जहाँ हैं, जैसे हैं, ठीक हैं। व्यवहार में अनाग्रहपूर्ण बुद्धि रखकर जीवन के रहस्य को, जीवन के छुपे हुए खजाने को प्राप्त करने में अपना जीवन बिताते हैं, उनका जीवन सार्थक है।

> *जिसके जीवन में हृदय की विशालता होगी, शुद्ध प्रेम होगा, उसका जीवन खिल उठेगा, सहज आनंदस्वभाव से परितृप्त हो उठेगा।*

जिसे कुछ बनने की, कुछ करने की इच्छा होती है वे तो किसी-न-किसी प्रकार के आग्रह से घिरे ही रहते हैं। कोई अपने को तपस्वी मानता हो। उसके पास यदि आप जाओ तो वह आपको कहेगा कि 'बीड़ी-सिगरेट छोड़ दो, मांस-मछली-अण्डे छोड़ दो...।' आपने यह सब छोड़ा हुआ है तो कहेगा कि 'लहसुन, प्याज छोड़ दो।' आप ये छोड़कर और आगे बढ़ना चाहोगे तो कहेगा कि 'तीन बार भोजन करते हो तो दो बार ही करो।' आप दो बार खाने लगोगे तो कहेगा कि 'अब एक वक्त का भोजन बंद कर दो।' एक बार खाते होगे तो कहेगा कि 'नमक बंद कर दो।' आप वह भी बंद कर दोगे तो कहेगा कि 'अनाज छोड़ दो। अब फलाहार करने लगो।' छोड़ो... छोड़ो... छोड़ते जाओ... छोड़ते जाओ... फिर कहेगा कि 'फल खाते हो, तपस्वी हो तो अब संसार में क्या रहना ? पत्नी और बच्चों को भी छोड़ दो।' मान लो, वह भी छूट गया तो कहेगा कि 'सब छूट गया, अब वस्त्रों को भी छोड़ दो। कौपीन पहनो।'

जीवन जीने का यह एक मार्ग है : त्याग... त्याग... त्याग...

जिन्होंने सब छोड़ दिया है, जो केवल कौपीन पहनते हैं, फलाहार अथवा भिक्षा पाते हैं एवं ईश्वर का चिंतन करते हैं उनके जीवन में भी यदि सत्संग नहीं है तो कोई दिव्य संगीत नहीं होता। जीवन में जो दबा हुआ होता है, वह कभी-कभार समय पाकर प्रगट हो जाता है कि 'तू मुझे नहीं जानता, मैं कबसे घर-बार छोड़कर यहाँ बैठा हूँ ? संसारी लोग क्या जानें कि भजन क्या होता है ? तपस्या क्या होती है ? मैं लहसुन नहीं खाता, प्याज नहीं खाता... मैंने बाल-बच्चों को छोड़ दिया, पत्नी को छोड़ दिया... मैं कोई जैसा-तैसा साधु थोड़े ही हूँ ? मेरे आगे तू क्या डींग मारता है ?'

अच्छा है, ठीक है कि छोड़ पाये हो, लेकिन छोड़कर आने की याद चित्त में अभी तक बनी हुई है। यह उचित नहीं है। अपने अहंकार को सजाने के लिए जो कुछ करते हो वह अनुचित है। आपके पास चीज-वस्तुएँ, रुपये-पैसे होना कोई खराब बात नहीं है लेकिन दूसरों का शोषण करके, दूसरों

को सताकर एकत्रित की गयी अथवा जिनका सदुपयोग न किया जा सका हो ऐसी चीजों, रुपयों-पैसों का होना न होना बराबर ही है।

कुछ वर्ष पहले किसी व्यक्ति ने मुझे बताया कि : ''चार गधे लेकर जो आदमी यहाँ रोड पर काम करता था, उसके पास अब २५-३० लाख रूपये हैं लेकिन उसकी पत्नी हमारी कॉलोनी में १०-१० पैसे में नींबू बेचती है।''

बाह्य पदार्थ पाकर तो हम खूब ऊँचे दिखते हैं लेकिन समझ नहीं होती तो भीतर से हम खूब नीचे रह जाते हैं। अंदर या बाहर से न ऊँचे दिखने की कोशिश करो, न अपने को नीचा मानने की भूल करो। दिखना-मानना, यह सब सापेक्ष है। अपने को ऊँचा तब मानोगे, जब दूसरे को नीचा मानोगे। अपने को नीचा तब मानोगे जब दूसरे को ऊँचा मानोगे। लव-कुश आपके आगे बहुत अच्छे लगेंगे, बड़े समर्थ लगेंगे लेकिन श्रीराम के आगे उतने बड़े व समर्थ नहीं लगेंगे। तहसीलदार किसी क्लर्क के आगे बड़ा दिखेगा लेकिन कलेक्टर के पास जाये तो छोटा दिखेगा। कलेक्टर मंत्री के आगे छोटा लगेगा और मंत्री भी मुख्यमंत्री के आगे छोटा लगेगा। वह मुख्यमंत्री भी प्रधानमंत्री के आगे छोटा लगेगा।

बाह्य पदार्थ पाकर तो हम खूब ऊँचे दिखते हैं लेकिन समझ नहीं होती तो भीतर से हम खूब नीचे रह जाते हैं। अंदर या बाहर से न ऊँचे दिखने की कोशिश करो, न अपने को नीचा मानने की भूल करो।

बड़ों के आगे आप छोटे हो जाते हो और छोटों के आगे आप बड़े बन जाते हो। मूर्ख के आगे आप विद्वान् लगते हो परन्तु अपने से अधिक विद्वान् के आगे आप मूर्ख लगते हो। यह सापेक्ष दृष्टि है और सापेक्ष दृष्टि में हमेशा भय, घृणा, लज्जा आदि बने ही रहते हैं।

एक सुनी हुई घटना है : एक फौजी था। उसकी पदोन्नति होते-होते वह कमाण्डर बन गया। जब वह परेड लेने जाता अथवा कहीं घूमने जाता, तब दूसरे फौजी उसे सलाम करते। उनके सलाम करने पर कमाण्डर के मुख से स्वाभाविक ही निकल जाता कि : ''ऐसे ही तो करते हो !''

उसके निकट के दो अंगरक्षक बार-बार यह सुनते। वे आपस में कहते कि : ''जब भी कमाण्डर को कोई सलाम करता है तो उनके मुख से स्वाभाविक ही निकल जाता है कि 'ऐसे ही तो करते हो !' इसका क्या कारण है ?'' आखिर एक दिन उन्होंने अपने कमाण्डर से पूछ ही लिया : ''साहब ! पिछले काफी समय से हम आपके साथ रह रहे हैं। जब कोई आपको सलाम करता है तब आप उसके ऊपर नाराज हो जाते हैं एवं कहते हैं कि : 'ऐसे ही तो करते हो !' इसका कारण क्या है ?''

कमाण्डर ने कहा :

''इसका एक ही कारण है। मैं भी पहले सिपाही था। सलाम कर-करके बड़े पद पर पहुँचा हूँ। मैं जब सिपाही था, तब कोई साहब आता तो मुझे जबरदस्ती सलाम करनी पड़ती थी। 'वे कब यहाँ से जायें ?' इस भाव से, बिना प्रेम के उन्हें सलाम करता था। अब सभी मुझे सलाम करते हैं तो मुझे लगता है कि ये सब भी मुझे आदर नहीं देते, मुझे सलाम नहीं मारते, वरन् इस पद को सलाम करते हैं। वह भी करना पड़ता है, इसलिए करते हैं। इसीलिए मेरे मुँह से 'ऐसे ही तो करते हो' -यह स्वाभाविक निकल जाता है।''

जीवन में जो भी प्रेम बिना का होगा, वह लेनेवाले को भी बोझा लगेगा और देनेवाले को भी आनंद नहीं आयेगा। जो कुछ होगा, उसमें अहंकार की दुर्गंध आयेगी। लेकिन जिसके जीवन में हृदय की विशालता होगी, शुद्ध प्रेम होगा, उसका जीवन खिल उठेगा, सहज आनंदस्वभाव से परितृप्त हो उठेगा। फिर 'यह करना है... यह छोड़ना है... यह पाना है...' आदि नहीं बचेगा। जो भी करना होगा, वह सहज स्वाभाविक होता जायेगा। ऐसा जीवन जीनेवाला ही अपने सहज स्वरूप को पा लेता है।

*

संत च्यवनप्राश

च्यवनप्राश विशिष्ट आयुर्वेदीय उत्तम औषध एवं पौष्टिक खाद्य है, जिसका प्रमुख घटक आँवला है। जठराग्निवर्धक और बलवर्धक च्यवनप्राश का सेवन अवश्य करना चाहिए। किसी-किसी की धारणा है कि च्यवनप्राश शीत ऋतु में ही सेवन करना चाहिए, परंतु यह सर्वथा भ्रान्त मान्यता है। इसका सेवन सब ऋतुओं में किया जा सकता है । ग्रीष्म ऋतु में भी वह गरमी नहीं करता, क्योंकि इसका प्रधान द्रव्य आँवला है, जो शीतवीर्य होने से पित्तशामक है।

लाभ : बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्ररोग आदि नष्ट हो जाते हैं। यह स्मरणशक्ति और बुद्धिवर्धक तथा कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता देनेवाला है तथा इसके सेवन से बुढ़ापा देरी से आता है। यह फेफड़े को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमंद है। वीर्यविकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह राजयक्ष्मा (टी. बी.) और हृदयरोगनाशक तथा भूख बढ़ानेवाला है। संक्षिप्त में कहा जाये तो पूरे शरीर की कार्यविधि को सुधार देनेवाला है।

मात्रा : दूध या नाश्ते के साथ १५ से २० ग्राम सुबह-शाम। बच्चों के लिए ५ से १० ग्राम की मात्रा।

च्यवनप्राश केवल बीमारों की ही दवा नहीं है, बल्कि स्वस्थ मनुष्यों के लिए उत्तम खाद्य भी है। आँवले में वीर्य की परिपक्वता कार्तिक पूर्णिमा के बाद आती है। लेकिन जानने में आता है कि कुछ बाजारू फार्मसियाँ धन कमाने व च्यवनप्राश की माँग पूरी करने के लिए हरे आँवले की अनुपलब्धता में आँवला पावडर से ही च्यवनप्राश बनाती हैं और कहीं-कहीं तो स्वाद के लिए शकरकंद का भी प्रयोग किया जाता है। कैसी विडंबना है कि धन कमाने के लिए ऐसे स्वार्थी लोगों द्वारा कैसे-कैसे तरीके अपनाये जाते हैं ! ऐसे लोगों का लक्ष्य केवल पैसा कमाना होता है, जिनका मानव के स्वास्थ्य के साथ कोई संबंध ही नहीं होता।

करोड़ों रूपये कमाने की धुन में लाखों-लाखों रूपये प्रचार में लगानेवाले लोगों को यह पता ही नहीं चलता कि लोहे की कड़ाही में च्यवनप्राश नहीं बनाया जाता। उन्हें यह भी नहीं पता कि ताजे आँवलों से और कार्तिक पूनम के बाद ही वीर्यवान च्यवनप्राश बनता है। २४ वनस्पतियों में उसे उबाला जाता है और ३२ पौष्टिक चीजें (शहद, घी, इलायची आदि) डालकर कुल ५६ वस्तुओं के मेल से असली च्यवनप्राश बनाया जाता है।

कार्तिक पूनम से पहले ही जो च्यवनप्राश बनाकर बेचते हैं और लाखों रूपये विज्ञापन में खर्च करते हैं, वे करोड़ों रूपये कमाने के सपने साकार करने में ही लगे रहते हैं।

इसके विपरीत सूरत, दिल्ली व अमदावाद समिति द्वारा 'न नफा न नुकसान' इस सेवाभाव से च्यवनप्राश में इन ५६ प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त हिमालय से लायी गयी वज्रबला (सप्तधातुवर्द्धनी वनस्पति), सप्तधातुवर्धक उपसंजीवनी का रस भी डालकर च्यवनप्राश बनाया गया है, जो केवल साधक परिवार के लिए है। विधिवत् ५६ प्रकार की वस्तुओं से युक्त शुद्ध एवं पौष्टिक यह च्यवनप्राश जरूर खाना चाहिए।

५६ वस्तुओं से, वीर्यवान आँवलों से बने इस च्यवनप्राश का नाम रखते हैं **'संत च्यवनप्राश'**। अन्य समितियाँ भी यह सेवाकार्य अगर करना चाहें तो 'न नफा न नुकसान' भाव से बनाकर आपस में बाँट लें।

आज का युग जेट युग है

⁂ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁂

आज के युग को 'जेट युग' कहते हैं। आज कल जो कुछ होता है सब 'फास्ट' (तीव्र गति से) होता है। पहले के जमाने में माताओं-बहनों को रोटी बनानी होती थी तो चूल्हे में गोबर के कण्डे डालतीं, लकड़ियाँ रखतीं, फिर फूँक-फूँककर चूल्हे जलातीं। फूँक-फूँककर थक जातीं, धुएँ के कारण आँखों में आँसू आ जाते, तब कहीं चूल्हा जलता, फिर रोटी पकातीं। बड़ी मुश्किल से वे रसोईघर का काम निपटा पाती थीं और आज... उठाया लाइटर, गैस का बटन घुमाया और गैस चालू... १५-२० मिनट में भोजन तैयार।

संदेश भेजने के लिए भी पहले कबूतरों से काम लिया जाता था। कबूतर पालो, उसे काम सिखाओ, फिर जब कभी जरूरत पड़े तो उसके गले में चिट्ठी डालो। वह उड़ता-उड़ता जाये, कब पहुँचे, कब संदेश वापस लाये... कोई पता नहीं। इस प्रकार कई दिन लग जाते थे। या तो कोई विश्वासपात्र व्यक्ति चिट्ठी लेकर घोड़े से जाता और जवाब लेकर वापस आता। उसमें भी कई दिन निकल जाते थे। अब तो उठाओ फोन, दबाओ बटन : 'हेलो ! मैं अमुक जगह से अमुक बोल रहा हूँ। मुझे अमुक से बात करनी है... इतना

काम हुआ है, इतना करना है... ।' बस, हो गयी बात । संदेश भी पहुँचा, उत्तर भी मिला और योजना भी बन गई ।

इसी प्रकार पहले के जमाने में लोगों को कहीं जाना होता था तो ज्यादातर लोग पैदल चलकर जाते थे। कुछ लोग बैलगाड़ी या घोड़े का उपयोग करते थे, फिर भी उसमें आने-जाने में काफी समय लगता था। आज कल स्कूटर, टैक्सी, बस, रेल की सुविधा तो है ही, परन्तु जो और जल्दी से कहीं पहुँचना चाहता है वह हवाई जहाज का उपयोग भी कर लेता है। उनमें भी जेट विमान की यात्रा ज्यादा 'फास्ट' होती है। इसलिए आज के युग को 'जेट युग' कहते हैं।

आज के इस 'फास्ट युग' में जैसे हम भोजन पकाने, कपड़े धोने, यात्रा करने, संदेश भेजने आदि व्यावहारिक कार्यों में 'फास्ट' हो गये हैं, वैसे ही क्यों न हम प्रभु का आनंद, प्रभु का ज्ञान पाने में भी 'फास्ट' हो जायें ?

पहले का जीवन शांतिप्रद जीवन था, इसलिए सब काम शांति से, आराम से होते थे एवं उनमें समय भी बहुत लगता था। लोग भी दीर्घायु होते थे। लेकिन आज हमारी जिंदगी इतनी लंबी नहीं है कि सब काम शांति और आराम से करते रहें। सतयुग, त्रेता, द्वापर में लोग हजारों वर्षों तक जप-तप-ध्यान आदि करते थे, तब प्रभु को पाते थे। किन्तु आज के मनुष्य की न ही उतनी आयु है, न ही उतनी सात्त्विकता, पवित्रता और क्षमता है कि वर्षों तक माला घुमाता रहे और तप करता रहे। अतः आज की इस 'फास्ट लाइफ' में प्रभु की मुलाकात करने में भी 'फास्ट' साधनों की आदत डाल देनी चाहिए। उस प्यारे प्रभु से हमारा तादात्म्य भी ऐसा 'फास्ट' हो कि,

दिले तस्वीरे है यार !
जबकि गर्दन झुका ली और मुलाकात कर ली...

बस, आप यह कला सीख लो। आप पूजा-कक्ष में बैठें, तभी आपको भक्ति, ज्ञान या प्रेम का रस आये ऐसी बात नहीं है। वरन् आप घर में हों या दुकान में, नौकरी कर रहे हों या फुर्सत में, यात्रा में हों या घर के किसी काम में... हर समय आपका ज्ञान, आनंद एवं माधुर्य बरकरार रह सकता है। युद्ध के मैदान में अर्जुन निर्लेप नारायण तत्त्व का अनुभव कर सकता है तो आप भी चालू व्यवहार में उस परमात्मा का आनंद-माधुर्य क्यों नहीं पा सकते ? गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :

तन सुकाय पिंजर कियो, धरे रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटे न वासना, बिना विचारे ज्ञान ॥

शरीर को सुखाकर पिंजर कर देने की भी आवश्यकता नहीं है। व्यवहार काल में जरा-सी सावधानी बरतो और कल्याण की कुछ बातें आत्मसात् करते जाओ तो प्रभु का आनंद पाने में कोई देर नहीं लगेगी।

तीन बातों से जल्दी कल्याण होता है :

पहली बात : **सच्चे हृदय से हरि का स्मरण।**

तुलसीदासजी ने कहा है :

भाँय कुभाँय अनख आलसहुँ।
नाम लेत मंगल दिसि दसहूँ ॥

भाव से, कुभाव से, क्रोध से, आलस्य से

जो अपने दोष नहीं देख सकता वह मूर्ख है, दूसरों के द्वारा दिखाने पर भी दोषों को कबूल नहीं करता है वह महामूर्ख है, परम हितैषी सद्गुरु के कहने पर भी अपने में दोष नहीं मानता है वह मूर्खों का शिरोमणि है।

युद्ध के मैदान में अर्जुन निर्लेप नारायण तत्त्व का अनुभव कर सकता है तो आप भी चालू व्यवहार में उस परमात्मा का आनंद-माधुर्य क्यों नहीं पा सकते ?

भी यदि हरि का नाम लिया जाता है तो दसों दिशाओं में मंगल होता है। अतः सच्चे हृदय से हरि का स्मरण करने से कितना कल्याण होगा !

जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिर्न संशयः।

जप करते रहो... हरि का स्मरण करते रहो... इससे आपको सिद्धि मिलेगी। आपका मन सात्त्विक होगा, पवित्र होगा और भगवद्रस प्रगट होने लगेगा।

दूसरी बात : **प्राणिमात्र का मंगल चाहो।** यहाँ हम जो देते हैं, वही हमें वापस मिलता है और कई गुना होकर मिलता है। यदि आप दूसरों को सुख पहुँचाने का भाव रखेंगे तो आपको भी अनायास ही सुख मिलेगा। अतः प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने का भाव रखो।

तीसरी बात : **अपने दोष निकालने के लिए तत्पर रहो।** जो अपने दोष देख सकता है, वह कभी-न-कभी दोषों को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील होगा ही। ऐसे मनुष्य की उन्नति निश्चित है। जो अपने दोष नहीं देख सकता वह तो मूर्ख है लेकिन जो दूसरों के द्वारा दिखाने पर भी अपने दोषों को कबूल नहीं करता है वह महामूर्ख है और जो परम हितैषी सद्गुरु के कहने पर भी अपने में दोष नहीं मानता है वह तो मूर्खों का शिरोमणि है। जो अपने दोष निकालने के लिए तत्पर रहता है वह इसी जन्म में निर्दोष नारायण का प्रसाद पाने में सक्षम हो जाता है।

हम जो देते हैं, वही हमें कई गुना होकर मिलता है। दूसरों को सुख पहुँचाने का भाव रखेंगे तो आपको भी अनायास ही सुख मिलेगा।

जो इन तीन बातों का आदर करेगा और सत्संग एवं स्वाध्याय में रुचि रखेगा, वह कल्याण के मार्ग पर शीघ्रता से आगे बढ़ेगा।

भगवान श्रीराम भी विद्यार्थी काल में जब धनुर्विद्या आदि सीखते थे तब विद्याध्ययन से समय निकालकर वशिष्ठजी महाराज के चरणों में ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुनते थे और चौदह वर्ष का वनवास मिला, तब भी भरद्वाज आदि संत-महात्माओं के सत्संग में बैठकर ब्रह्मविद्या का पान करते थे। भगवान श्रीकृष्ण भी सांदीपनि ऋषि के चरणों में बैठकर सत्संगामृत का पान करते थे। कबीरजी ने भी उस ब्रह्म-परमात्मा के रस का आस्वादन किया और उनके चरणों में काशीनरेश कृतार्थ हुआ। नानकजी ने भी जीवन भर ब्रह्मविद्या का पान किया और अपने प्यारों को कराया। अब आप भी इस कलियुग में ब्रह्मरस का पान करके पावन होते जाओ।

जानिऊ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषय बिलास विरागा॥

'जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब संपूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाये। जैसे, शरीर रोज गंदा हो जाता है तो पानी से स्नान करके उसे स्वच्छ कर लेते हैं, वैसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार आदि से मन मैला हो जाता है तो उसे सत्संग की वर्षा में स्नान कराके पवित्र कर लो। ज्यों-ज्यों पवित्रता बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों भीतर का आत्म-परमात्मरस छलकता जायेगा। जीवन हलका फूल जैसा हो जायेगा। चिंतारहित, अहंकाररहित, तनावरहित जीवन हो जायेगा। जिस वक्त जो काम करना हो, कर लिया आनंद से, उत्साह से। नींद आई तो सो गये और जाग गये तब भी वाह वाह... गोता मारकर अमृत पी लिया... देर किस बात की भैया ! यह 'जेट युग' है। प्रभु का आनंद पाने का यह 'जल्द युग' है।

*

महर्षि कर्दम एवं देवहूति का दिव्य चरित्र

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

(गतांक का शेष)

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

'विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा की अछेद्य बंधन मानते हैं । किन्तु वही संग या आसक्ति जब संत-महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो वह मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है ।'

(श्रीमद्भागवत : ३.२५.२०)

इस प्रकार भगवान कपिल ने माता देवहूति को भक्ति आदि का रहस्य सुनाया । फिर सांख्य मत का उपदेश देते हुए कहा :

''पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि और पाँच महाभूत इन सबमें परिवर्तन होता है । ये प्रकृति के हैं लेकिन जिसकी सत्ता से परिवर्तन होता है और जो परिवर्तन से रहित है वही अपना आत्मस्वरूप है । मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, देह, देह के संबंध आदि को प्रकृति की चीजें समझकर इनसे संबंध-विच्छेद करके जो अपने आत्मस्वरूप में आ जाता है, वह मुक्त हो जाता है ।''

योगमार्ग का उपदेश देते हुए भगवान कपिल माता देवहूति से कहते हैं कि यम-नियमादि करके इस जीव को अपने मन-इन्द्रियों पर संयम करना चाहिए ।

इस प्रकार भगवान कपिल ने विस्तारसहित सांख्य, योग एवं भक्तिमार्ग का वर्णन माता देवहूति के समक्ष किया और वह पुण्यशीला देवी उपदेश सुनकर, अपने चित्त को परब्रह्म परमात्मा में स्थित करने में रत हो गयीं । भगवान कपिल ने अपनी माता को आत्मज्ञान का उपदेश देने के बाद उनसे अनुमति लेकर वहाँ से प्रस्थान किया । पिता के आश्रम से ईशान कोण की ओर यात्रा करते-करते, उपदेश देते-देते कलकत्ता पहुँचे । गंगा जहाँ सागर से मिलती हैं उस जगह पहुँचे । आज भी हम गंगासागर का मेला देखते हैं । वहाँ स्वयं समुद्र ने उनका पूजन करके उन्हें स्थान दिया । तीनों लोकों को शांति प्रदान करने के लिए योगमार्ग का अवलंबन कर समाधि में स्थित हो गये । सिद्ध, गंधर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्यगण भी उनका सब प्रकार से स्तवन करते रहते हैं ।

तुम्हारा समय और जीवन धन से, रत्नों-गहनों से, ऋद्धि-सिद्धियों से, अष्टसिद्धियों-नवनिधियों से भी ऊँचा है । अपने जीवन को जीवनदाता के अनुभव में लगाकर अमर हो जाना । यही भागवत का उपदेश है ।

तुम्हारा समय धन से बड़ा है । तुम्हारा जीवन रत्नों और गहनों से बड़ा ऊँचा है । तुम्हारा जीवन ऋद्धि-सिद्धियों से भी ऊँचा है । तुम्हारा जीवन अष्टसिद्धियों-नवनिधियों से भी ऊँचा है । तुम अपने ऐसे कीमती जीवन को संसार की 'तू-तू... मैं-मैं' में मत खपा देना बल्कि अपने जीवन को जीवनदाता के अनुभव में लगाकर अमर हो जाना । यही भागवत

का उपदेश है ।

कितना तीव्र विवेक है कर्दम ऋषि का ! योगबल से मनोवांछित गति करनेवाला 'कामाख्य' नामक दिव्य विमान बनाया है । जैसे, आप सपने में मन से पूरी दुनिया बना लेते हैं ऐसे ही योगबल से योगी लोग इस प्रकार की दूसरी सृष्टि भी बना सकते हैं । ऐसे योगबल को भी उन्होंने तुच्छ समझा एवं जिससे योगसिद्ध होता है उस योग के तत्त्व में टिकने के लिए अपने गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया ।

भगवान कपिल तो गंगासागर की ओर पधारे और माँ देवहूति ने इन्द्रियों को मन में एवं मन को बुद्धि में लीन किया । बुद्धि को परब्रह्म परमात्मा में विश्रांति दिलायी । जब परब्रह्म परमात्मा में बुद्धि ने विश्रांति पायी तो फिर बुद्धि बुद्धि न बची, ऋतंभरा प्रज्ञा हो गयी ।

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, देह, देह के संबंध आदि को प्रकृति की चीजें समझकर इनसे संबंध-विच्छेद करके जो अपने आत्मस्वरूप में आ जाता है, वह मुक्त हो जाता है ।

जैसे, लोहे की पुतली को पारस का स्पर्श करवा दो तो वह सोने की हो जाती है । फिर उसे जंग लगने का भय नहीं रहता । ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा में टिकी हुई बुद्धि को संसार के मोह-माया का भय नहीं रहता ।

माँ देवहूति जब ऋतंभरा प्रज्ञा के परम सुख में स्थित हुईं तो उनकी आँखों से हर्ष के दो आँसू टपक पड़े । जिस सरोवर में वे आँसू गिरे, उस सरोवर का नाम है बिन्दु सरोवर । उन्हें आत्मशांति की यह सिद्धि जहाँ मिली उस जगह का नाम है सिद्धपुर । गुजरात में सिद्धपुर और सिद्धपुर में बिन्दु सरोवर आज भी माता देवहूति के पावन चरित्र की गाथा गा रहे हैं । (संपूर्ण)

*

लक्ष्मीपूजन का पौराणिक पर्व : दीपावली

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

अंधकार में प्रकाश का पर्व... जगमगाते दीयों का पर्व... लक्ष्मीपूजन का पर्व... मिठाई खाने-खिलाने का पर्व है दीपावली । दीपावली का पर्व कबसे मनाया जाता है ? इस विषय में अनेक मत प्रचलित हैं :

किसी अंग्रेज ने आज से ९०० वर्ष पहले भारत की दिवाली देखकर, अपनी यात्रा-संस्मरणों में इसका बड़ा सुंदर वर्णन किया था । अतः कुछ लोग कहते हैं कि ९०० वर्ष पहले आकर उसने वर्णन किया है तो दिवाली उसके पहले की होगी ।

कुछ का कहना है कि गुरु गोविंदसिंह इस दिन से विजययात्रा पर निकले थे । तबसे सिखों ने इस उत्सव को अपना मानकर प्रेम से मनाना शुरू किया ।

रामतीर्थ के भक्त बोलते हैं कि : ''रामतीर्थ ने जिस दिन संन्यास लिया था वह दिवाली का दिन हमारे लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इसी दिन वे प्रगट हुए थे एवं इसी दिन समाधिस्थ भी हुए थे । अतः हमारे लिये यह दिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।''

महावीर के प्यारे कहते हैं कि : ''दिवाली के दिन बाहर दीये जलाते हैं। महावीर ने अंदर का अंधेरा मिटाकर उजाला किया था। महावीर ने अपने जीवन में तीर्थंकरत्व को पाया था। अतः उनके आत्म-उजाले की स्मृति करानेवाला यह त्योहार हमारे लिए विशेष आदरणीय है।''

आत्मसंतोष रूपी धन सबसे ऊँचा है। उस धन में प्रवेश करा दे ऐसा ऐहिक धन हो, इसीलिए ऐहिक धन को सत्कर्मों का संपुट देकर सुख-शांति, भुक्ति-मुक्ति का माधुर्य पाने के लिए महालक्ष्मी की पूजा-अर्चना की जाती है।

कुछ लोगों का कहना है कि : ''आदि मानव ने जब अंधेरे पर प्रकाश से विजय पाया, तबसे यह उत्सव मनाया जा रहा है। जबसे प्रकाश की खोज हुई, तबसे उस प्रकाश की खोज को याद रखने के लिए, अग्नि की खोज को याद रखने के लिए वर्ष में एक दिन दीपोत्सव मनाया जाता है।''

वेदों को माननेवाले बोलते हैं कि : ''भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक इसी अमावस के दिन हुआ था और राज्याभिषेक के उत्सव में दीप जलाये गये थे, घर-बाजार सजाये गये थे, गलियाँ साफ-सुथरी की गयी थीं, मिठाइयाँ बाँटी गयी थीं, तबसे दिवाली मनायी जा रही है।''

कुछ लोग बोलते हैं कि : ''भगवान ने बलिराजा से दान में तीन पैर पृथ्वी माँग ली और विराट रूप लेकर भगवान ने तीनों लोक ले लिये तथा सुतल का राज्य बलि को अर्पित किया। सुतल का राज्य जब बलि को मिला और उत्सव हुआ, तबसे दिवाली चली आ रही है।''

केवल धन सुविधाएँ देता है, वासनाएँ उभारता है जबकि धर्मयुक्त धन ईश्वरप्रेम उभारता है। ज्ञान-धर्मसहित जो संपत्ति होती है वही महालक्ष्मी होती है।

कुछ लोग कहते हैं कि : ''सागर-मंथन के वक्त क्षीरसागर से महालक्ष्मी उत्पन्न हुईं तथा भगवान नारायण एवं लक्ष्मी का विवाह-प्रसंग था, तबसे यह दिवाली मनायी जा रही है।''

इस प्रकार पौराणिक काल में जो भिन्न-भिन्न प्रथाएँ थीं, वे प्रथाएँ देवताओं के साथ जुड़ गईं और दिवाली का उत्सव बन गया।

कबसे मनाया जा रहा है यह उत्सव ? इसका कोई ठोस दावा नहीं कर सकता, लेकिन है यह रंग-बिरंगे उत्सवों का गुच्छ... यह केवल सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्सव ही नहीं, वरन् आत्मप्रकाश की ओर जाने का संकेत करनेवाला, आत्मोन्नति करानेवाला उत्सव है।

संसार की सभी जातियाँ अपने-अपने उत्सव मनाती हैं। प्रत्येक समाज के अपने उत्सव होते हैं जो अन्य समाजों से भिन्न होते हैं परन्तु हिन्दू पर्वों और उत्सवों में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो किसी अन्य जाति के उत्सवों में नहीं हैं। हम लोग वर्षभर उत्सव मनाते रहते हैं। एक त्योहार मनाते ही अगला त्योहार सामने दिखाई देता है। इस प्रकार पूरा वर्ष आनंद से बीतता है।

हिन्दू धर्म की मान्यता है कि सब प्राणियों में अपने जैसी आत्मा समझना चाहिए और किसी को अकारण दुःख नहीं देना चाहिए। संभवतः इसी बात को समझाने के लिए पितृपक्ष में कौए को भोजन देने की प्रथा है। नाग पंचमी के दिन सर्प को दूध पिलाया जाता है। कुछ अवसरों पर कुत्ते को भोजन दिया जाता है।

हर ऋतु में नई फसल आती है। पहले वह फसल ईश्वर को अर्पण करना, फिर मित्रों एवं

संबंधियों में बाँटकर खाना यह हिन्दू परंपरा है। इसीलिए दिवाली पर खील-बताशे, मकर संक्रांति यानी उत्तरायण पर्व पर तिल-गुड़ बाँटे जाते हैं। अकेले कुछ खाना हिन्दू परंपरा के विपरीत है। पनीरयुक्त मिठाइयाँ स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं। स्वामी विवेकानंद मिठाई की दुकान को साक्षात् 'यम की दुकान' कहते थे। अतः दिवाली के दिनों में नपी-तुली मिठाई खानी चाहिए।

जहाँ मूर्खों का सत्कार नहीं, विद्वानों का अनादर नहीं, जहाँ से याचक कुछ पाये बिना लौटते नहीं, जहाँ परिवार में स्नेह होता है, वहीं वास्तव में लक्ष्मीपूजन होता है।

एक कथा है कि एक दरिद्र ब्राह्मण था। अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए उसने भगवान शिव की आराधना की। शिवजी ने कहा :

''तू राजा को इस बात के लिए राजी कर ले कि कार्तिक अमावस्या की रात्रि को तेरे नगर में कोई दीये न जलाये। केवल तू ही दीये जलाने की सम्मति ले लेना। उस रात्रि को लक्ष्मी विचरण करती आयेंगी और तेरे जगमगाते घर में प्रवेश करेंगी। उस वक्त तू लक्ष्मीजी से कहना कि : 'माँ! आप चंचला हो। अगर अचल रहकर मेरे कुल में तीन पीढ़ी तक रहना चाहो तो ही आप मेरे घर में प्रवेश करना।' अमावस के अंधेरे में भी जगमगाता उजाला करने का तुम्हारा पुरुषार्थ देखकर माँ प्रसन्न होंगी और वरदान दे देंगी।''

ब्राह्मण ने ऐसा ही किया और राजा को प्रसन्न कर लिया। राजा ने कहा कि : ''इतनी खुशामद करके आप केवल इतनी-सी चीज माँगते हैं ? ठीक है, मैं आज्ञा करा दूँगा कि उस दिन कोई दीये न जलाये।''

लक्ष्मी उसीके यहाँ रहती हैं, जिसके यहाँ उजाला होता है, जिसके पास सही समझ होती है। समझ सही होती है तो लक्ष्मी महालक्ष्मी हो जाती हैं और समझ गलत होती है तो धन मुसीबतें एवं चिन्ताएँ ले आता है।

राजा ने आज्ञा करवा दी कि अमावस की रात को कोई दीये नहीं जलायेगा। उस दिन उस ब्राह्मण ने खूब दीये जलाये और माँ लक्ष्मी उसके यहाँ आयीं। ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं।

कुल मिलाकर कहने का तात्पर्य यही है कि लक्ष्मी उसीके यहाँ रहती हैं, जिसके यहाँ उजाला होता है। उजाले का आध्यात्मिक अर्थ यह है कि हमारी समझ सही हो। समझ सही होती है तो लक्ष्मी महालक्ष्मी हो जाती हैं और समझ गलत होती है तो धन मुसीबतें एवं चिन्ताएँ ले आता है।

एक बार देवराज इन्द्र ने माँ लक्ष्मी से पूछा :

''दिवाली के दिनों में जो आपकी पूजा करता है, उसके यहाँ आप रहती हैं- इस बात के पीछे आपका क्या अभिप्राय है ?''

माँ लक्ष्मी ने कहा :

स्वधर्मानुष्ठानस्तु धैर्यबललिप्तेषु च।

''हे इन्द्र ! जो अपने धर्म का, अपने कर्त्तव्य का पालन धैर्य से करते हैं, कभी विचलित नहीं होते एवं स्वर्गप्राप्ति के लिए साधनों में सादर लगे रहते हैं, उन प्राणियों के भीतर मैं सदा निवास करती हूँ।

दान, चतुरता, सरलता, अहंकारशून्यता और परम सौहार्द्रता को जो हृदय में भरे होते हैं, जिनमें क्षमा का गुण विकसित रहता है, सत्य, दान जिनका स्वभाव बन जाता है, पवित्रता और करुणा, कोमल वचन एवं मित्रों से अद्रोह (धोखा न करने का) जिनका वचन है, उनके यहाँ तो मैं बिना बुलाये रहती हूँ।''

लक्ष्मीजी के चित्र पर केवल फूल चढ़ा दिये, पत्र-पुष्प चढ़ा दिये, नैवेद्य धर दिया... इससे ही लक्ष्मीपूजन संपन्न नहीं हो जाता, बल्कि पूर्ण लक्ष्मीपूजन तो वहाँ होता

है जहाँ मूर्खों का सत्कार नहीं और विद्वानों का अनादर नहीं होता, जहाँसे याचक कुछ पाये बिना (खाली हाथ) नहीं लौटता, जहाँ परिवार में स्नेह होता है, वहीं वास्तव में लक्ष्मीपूजन होता है। वहाँ लक्ष्मी 'वित्त' नहीं होतीं, महालक्ष्मी होकर रहती हैं।

धन हो और समझ नहीं हो तो वह धन, वह लक्ष्मी वित्त हो जाती है। धन दिखावे के लिए नहीं है, वरन् दूसरों का दुःख हरने के लिए है। धन धर्म के लिए है और धर्म का फल भी भोग नहीं, योग है। जीवात्मा परमात्मा के साथ योग करे इसलिए धर्म किया जाता है।

जहाँ शराब-कबाब होता है, दुर्व्यसन होते हैं, कलह होता है वहाँ की लक्ष्मी 'वित्त' बनकर सताती है, दुःख और चिंता उत्पन्न करती है। जहाँ लक्ष्मी का धर्मयुक्त उपयोग होता है वहाँ लक्ष्मी महालक्ष्मी होकर नारायण के सुख से सराबोर करती है।

केवल धन सुविधाएँ देता है, वासनाएँ उभारता है जबकि धर्मयुक्त धन ईश्वरप्रेम उभारता है। परदेश में धन तो खूब है लेकिन वह वित्त है, महालक्ष्मी नहीं... जबकि भारतीय संस्कृति ने सदैव ज्ञान का आदर किया है और ज्ञान-धर्मसहित जो संपत्ति होती है वही महालक्ष्मी होती है।

गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतनधन खान।
जब आवे संतोषधन, सब धन धूरि समान॥

आत्मसंतोष रूपी धन सबसे ऊँचा है। उस धन में प्रवेश करा दे ऐसा ऐहिक धन हो, इसीलिए ऐहिक धन को सत्कर्मों का संपुट देकर सुख-शांति, भुक्ति-मुक्ति का माधुर्य पाने के लिए महालक्ष्मी की पूजा-अर्चना की जाती है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ८५ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया नवम्बर के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।
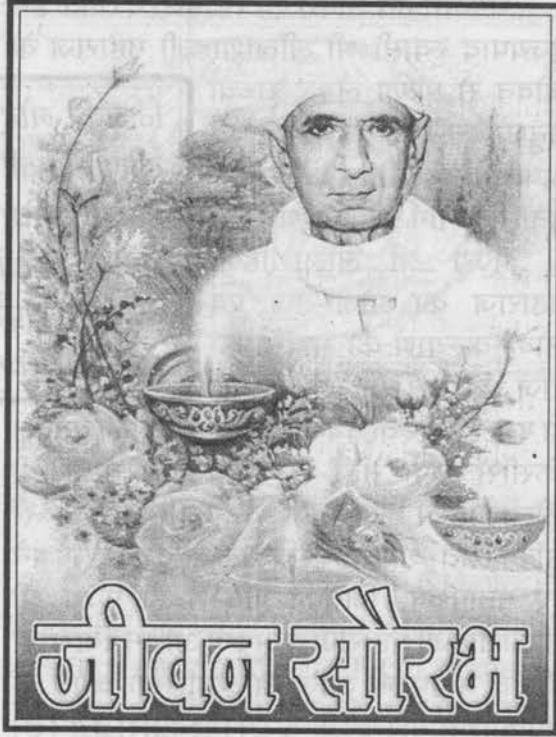
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

धन्य है ऐसे महापुरुषों को कि जिन्होंने जनसेवा के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करके, मोह-ममता की होली जलाकर, त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँचकर दुस्तर माया को पार कर लिया एवं मनुष्य के अंतिम लक्ष्य, ऐसे निर्भय पद पर आरूढ़ हो गये।

लाख-लाख वंदन हैं ऐसे महापुरुषों को, जो संसार-ताप से तपते लोगों को भी उस निर्भय पद की ओर ले जाते हैं। कोटि-कोटि प्रणाम हैं ऐसे महापुरुषों को जो अपनी ब्रह्मानंद की मस्ती को छोड़कर दूसरों की डगमगाती नैया को किनारे लगाने में सहायक होते हैं।

भगवान हमें शक्ति एवं सद्बुद्धि दें ताकि हम पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के जीवन से प्रेरणा लेकर सच्चा मनुष्य बनने का प्रयत्न करें एवं अपने मानव जीवन को सफल बनाने के मार्ग पर आगे बढ़ें।''

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का ओज-तेज एवं लोक-कल्याण की भावना का बीज अब फल-फूलकर वटवृक्ष हो गया है और वह विश्रांतिदायक विशाल वटवृक्ष किसीसे छुपा नहीं है। पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के कृपा-प्रसाद से सुविकसित, शांतिदायी विशाल वटवृक्षस्वरूप बने हुए महापुरुष, जिनकी गोद में ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपनी अंतिम श्वास ली थीं, वे महापुरुष आज आध्यात्मिक जगत के सुप्रकाशित भास्कर के रूप में विश्वप्रसिद्ध बने हैं।

जिनकी गोद में ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपनी अंतिम श्वास ली थीं, वे महापुरुष आज आध्यात्मिक जगत के सुप्रकाशित भास्कर के रूप में विश्वप्रसिद्ध बने हैं।

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये, साँईं आसाराम॥

*

पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू के

सत्संग-कथा प्रसंग

तुमसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है

१५ जून १९५०, नैनीताल।

एक लड़के को उसके पिता ने कहा : ''अन्दर कमरे में जाकर जाँच कर कि वहाँ कितने व्यक्ति सत्संग सुनने के लिए बैठे हैं और कितने लोग उपदेश दे रहे हैं।''

वास्तव में तो एक ही उपदेशक और ५० सत्संगी बैठे थे। वे जिस कमरे में बैठे थे उसके चारों ओर की दीवारों में काँच लगे हुए थे। लड़के ने सभी मनुष्यों को देखा, परन्तु उसके साथ-ही-साथ काँच के अन्दर उन लोगों के प्रतिबिम्ब भी देखे। गिनती करके वह अपने पिता के पास गया और बोला : ''पिताजी ! दो उपदेशक और सौ सत्संगी बैठे हैं।''

उसके पिता तो सत्य हकीकत जानते ही थे, परन्तु कुछ बोले नहीं। जब सत्संगी चले गए और कमरा खाली हो गया तब पिता बेटे को लेकर अन्दर गए और कहने लगे :

''देख, अन्दर कितने लड़के हैं ?''

बेटे ने जवाब दिया : ''दो।''

उसके पिता ने कहा : ''जा, दूसरे लड़के को यहाँ बुला ला।''

बेटे ने जाकर दूसरे लड़के को पकड़कर लाने की खूब कोशिश की किन्तु दूसरा लड़का वहाँ हो तो पकड़ लाए ना !

अन्त में उसने काँच को जोर से धक्का मारा तो काँच टूट गया और दिखता हुआ दूसरा लड़का भी गायब हो गया। उसने जाकर पिता से कहा :

''मैं ही था, दूसरा कोई लड़का नहीं था।''

तब पिता ने उसे समझाया : ''दूसरा लड़का कोई नहीं था, तू ही था। काँच में तेरा ही प्रतिबिम्ब दिख रहा था। जो उपदेशक भी तुझे दो दिखे वे भी दो न थे और सत्संगी भी सौ न थे, परन्तु उन लोगों के प्रतिबिम्बों को तूने काँच में देखा इसीलिए तुझे सब दुगुने दिखे।''

इसी प्रकार इस संसार में भी यह सब एक का ही प्रतिबिम्ब है। तुमसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु नहीं है, परन्तु शरीर को 'मैं' मानने की भ्रान्ति के कारण यह सब विविधता दिख रही है।

कोटि-कोटि प्रणाम हैं ऐसे महापुरुषों को जो अपनी ब्रह्मानंद की मस्ती को छोड़कर दूसरों की डगमगाती नैया को किनारे लगाने में सहायक होते हैं।

एक बार उल्लुओं की पंचायत इकट्ठी हुई। उन लोगों ने एक-दूसरे से पूछा :

''तुममें से किसीने सूर्य को देखा है ?''

भला उनमें से किसीने सूर्य को देखा हो तो 'हाँ' कहे न ! उन लोगों ने निश्चय किया कि सूर्य जैसा कुछ है ही नहीं। ऐसी ही दशा अज्ञानी जीवों की है। वे लोग भी ईश्वर के लिए कहते हैं : ''ईश्वर जैसा कुछ नहीं है।''

वे लोग इस जगत को ही सत्य समझ रहे हैं।

अपने आपको भूलके हैरान हो गया।
माया के जाल में फँसा वैरान हो गया॥

(क्रमशः)

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक योजना

इस गुरुपूर्णिमा से आगामी गुरुपूर्णिमा तक एक वर्ष के दौरान 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के ज्यादा से ज्यादा सदस्य बनानेवाले पाँच सेवाधारी साधकों को आम सत्संग-सभा में पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा स्वर्णपदक दिये जायेंगे।

सेवाधारी कृपया ध्यान दें

१. प्रतियोगिता में अंक क्रमांक ८० (अगस्त) से बनाये गये सदस्यों की ही गिनती होगी।

२. प्रतियोगिता में व्यक्तिगत स्तर पर बनाये गये सदस्यों की ही गिनती होगी, किसी समिति के या सामूहिक स्तर पर नहीं।

३. प्रतियोगिता में भाग ले रहे नये साधकों को अमदावाद 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय से सेवाधारी क्रमांक लेना अनिवार्य है।

४. अधिक जानकारी के लिए 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से सम्पर्क करें।

दान का रहस्य

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

स्नान-दान आदि पुण्य कर्म हैं किन्तु दान करते समय दाता अगर आनंदित नहीं हुआ, उसके भीतर शुभ का भाव उदित नहीं हुआ तो दान का सुखद फल नहीं मिलता। जो दान जबरदस्ती करवाया गया हो, झिझकते हुए किया गया हो, दबाव से कराया गया हो- स्वर्ग में भी उसका कोई सुखद फल नहीं मिलता।

कोई नेता आकर किसी सेठ से कहे : ''अरे भाई ! दान करो।''

सेठ कहे : ''लिखो, दो हजार।''

''नहीं नहीं, सेठ ! आपका तो ११ हजार लिखेंगे।''

सेठ को मन में होता है कि 'यह नेता तो जरा ऐसा ही है। अगर पाँच नहीं दूँगा तो कहीं आयकरवालों से छापा न मरवा दे !' अतः वह बोलता है : ''साहब ! ऐसा करें कि दो नहीं, पाँच हजार लिख लें।''

सेठ बाहर से तो पाँच की उदारता दिखाता है किन्तु भीतर से सुखी नहीं होता। उसे दान भाव का एहसास नहीं होता, वरन् ऐसा होता है कि ' चलो, मुसीबत टली।'

जब दान अपनी ओर से दिया जाता है जैसे

किसी दरिद्र को उसकी आवश्यकता की वस्तु का दान दे दिया, किसी रोगी को औषधि का दान दे दिया, किसी थके-हारे, निराश व्यक्ति को सान्त्वना का दान दे दिया, अभक्त को भगवान की भक्ति का दान दिलवा दिया... तब ऐसे दान का भी यदि अंतःकरण में आनंद आता है तो ठीक, अन्यथा ऐसे दान का भी ज्यादा महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार दान का भी अपना एक रहस्य है। इस संदर्भ में शास्त्रों में एक प्रसंग आता है :

एक बार देवर्षि नारद महीसागर संगम में स्नान हेतु पधारे। उसी समय वहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि भी आ पहुँचे। नारदजी ने उनसे पूछा : ''महात्माओं ! आप लोग कहाँ से पधारे हैं ?''

उन्होंने बताया : ''मुने ! हम लोग सौराष्ट्र देश में रहते हैं, जहाँ के राजा धर्मवर्मा हैं। एक बार राजा धर्मवर्मा ने दान के तत्त्व को समझने के लिए बहुत वर्षों तक तपस्या की। तब आकाशवाणी ने उन्हें निम्नांकित श्लोक सुनाया :

द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडंगं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते ॥

'दान के दो हेतु, छः अधिष्ठान, छः अंग, दो फल, चार प्रकार, तीन भेद एवं तीन विनाश-साधन हैं।'

यह श्लोक कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी। राजा के पूछने पर भी आकाशवाणी ने उसका अर्थ नहीं बतलाया। तब राजा ने ढिंढोरा पिटवाकर यह घोषणा करवायी कि : 'जो इस श्लोक की ठीक-ठीक व्याख्या करेगा, उसे मैं सात लाख गौएँ, उतनी ही स्वर्णमुद्राएँ तथा सात गाँव दूँगा।' हम सब वहीं से आ रहे हैं। श्लोक का अर्थ दुर्बोध होने से कोई उसकी व्याख्या नहीं कर सका है।''

नारदजी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वे एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप लेकर धर्मवर्मा के पास पहुँचे एवं बोले :

''राजन् ! मुझसे उस श्लोक की व्याख्या सुनिए एवं उसके बदले में जो देने के लिए ढिंढोरा पिटवाया है, उसकी सत्यता प्रमाणित कीजिए।''

राजा : ''ब्रह्मन् ! ऐसी बात तो बहुत-से ब्राह्मण कह चुके किन्तु किसीने भी उसका वास्तविक अर्थ नहीं बताया। दान के दो हेतु कौन-से हैं ? छः अधिष्ठान एवं छः अंग कौन-से हैं ? दो फल, चार प्रकार, तीन भेद एवं तीन विनाश-साधन कौन-से हैं ? इन सात प्रश्नों के उत्तर यदि आप ठीक-ठीक बतला सकें तो मैं आपको सात लाख गौएँ, सात लाख स्वर्णमुद्राएँ एवं सात गाँव दूँगा।''

ब्राह्मण वेशधारी नारदजी बोले :

''राजन् ! दान के दो हेतु हैं - सामर्थ्य और श्रद्धा। श्रद्धा है और धन नहीं है तो क्या दान दिया जा सकता है ? ऐसे ही सामर्थ्य है पर श्रद्धा नहीं है, तब भी दान नहीं दिया जा सकता।

धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय- ये दान के छः अधिष्ठान कहे जाते हैं।

जो दान सत्पात्र को, सत्प्रवृत्ति के लिए, भगवान का समझकर दिया जाये- वह दान उत्तम है। उससे धर्म-लाभ होता है।

जो दान इस भाव से दिया जाये कि 'यहाँ देंगे तो वहाँ (परलोक में) मिलेगा'- यह अर्थयुक्त दान है।

कोई कामना पूर्ण हुई और दान कर दिया- यह कामयुक्त दान है। जैसे 'मेरा इतना काम हो जाये तो मैं बूँदी के सवा मन लड्डू चढ़ाऊँगा।'

जिस दान में यह भाव हो कि 'कई लोग कर रहे हैं। हम कुछ नहीं देंगे तो ठीक नहीं। चलो, कुछ दे देवें।' यह लज्जायुक्त दान है।

'यदि दान नहीं देंगे तो पता नहीं , यह हमारा अहित न कर दे' - इस भाव से जो दान दिया जाता है, वह भययुक्त दान है।

किसी भाट-चारण ने प्रशंसा कर दी और हर्षित होकर उसे कुछ दे दिया- इस प्रकार का

दान हर्षयुक्त दान कहलाता है।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, भय और हर्ष - ये दान के छः अधिष्ठान हैं। इन्हीं के कारण दान होता है।

दान के छः अंग हैं : १. दाता अर्थात् दान करनेवाला। २. प्रतिगृहीता अर्थात् दान लेनेवाला। ३. शुद्धि अर्थात् अपनी शुद्ध कमाई का। कसाई, वेश्या आदि का धन अशुद्ध माना जाता है। ४. धर्मयुक्त देय वस्तु अर्थात् पवित्र वस्तु। ५. देश अर्थात् पवित्र स्थान। ६. काल अर्थात् पवित्र समय।

इहलोक एवं परलोक - दान के ये दो फल हैं।

ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक- ये दान के चार प्रकार हैं। कुआँ-पोखरा खुदवाना, बगीचा लगाना आदि जो सबके काम आये वह ध्रुव है।

नित्य दान ही त्रिक है। संतान, विजय, स्त्री आदिविषयक इच्छापूर्ति के लिये दिया गया दान काम्य है। ग्रहण-संक्रान्ति आदि पुण्य अवसरों पर दिया गया दान नैमित्तिक है।

उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ- ये दान के तीन भेद हैं।

दान देकर पछताना, कुपात्र को दान देना, बिना श्रद्धा के दान देना अर्थात् पश्चाताप, कुपात्र और अश्रद्धा- ये दान के तीन नाशक हैं।

राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें तुम्हारे सात प्रश्नों के जवाब के रूप में दान का माहात्म्य सुना दिया।''

प्रश्नों के समुचित उत्तर पाकर धर्मवर्मा अत्यंत चकित हुआ एवं बोला :

''जिस प्रश्न को बड़े-बड़े विद्वान् तक न सुलझा पाये, उन्हें आपने बड़ी सरलता से बता दिया। वृद्ध ब्राह्मण के वेश में छुपे हुए आप कौन हैं ? कृपया आप अपने असली स्वरूप में प्रगट होइए।''

तब देवर्षि नारद अपने असली स्वरूप में आकर बोले :

''मैं देवर्षि नारद हूँ। मृत्युलोक के ब्राह्मण तुम्हें जवाब नहीं दे सके इसीलिए बूढ़े ब्राह्मण का रूप बनाकर मैं स्वयं उत्तर देने आया।''

राजा : ''मेरा अहोभाग्य ! अब आप ये सात लाख गौएँ, सात लाख स्वर्णमुद्राएँ एवं सात गाँव लेने की कृपा कीजिए।''

देवर्षि नारद : ''ठीक है। तुम्हारा संकल्प मैं ले लेता हूँ। अभी इन चीजों को मैं तुम्हारे पास ही धरोहर के रूप में छोड़ रहा हूँ। आवश्यकता पड़ने पर ले लूँगा।''

ऐसा कहकर नारदजी रैवतक पर्वत पर चले गये और विचारने लगे कि मैंने भूमि, गौएँ एवं स्वर्णमुद्राएँ तो पा लीं, पर अब योग्य ब्राह्मण कहाँ मिले जिसे मैं ये सब दान दे सकूँ ? यह सोचकर उन्होंने बारह प्रश्न बनाये और उन्हें ही गाते हुए वे ऋषियों के आश्रमों पर विचरने लगे। नारदजी उन प्रश्नों को पूछते हुए सारी पृथ्वी घूम आये, पर कहीं उनके प्रश्नों का समाधान न हुआ। योग्य ब्राह्मण न मिलने के कारण नारदजी बड़े दुःखी हुए और हिमालय पर्वत पर एकान्त में बैठकर विचारने लगे। सोचते-सोचते अकस्मात् उनके ध्यान में आया कि : 'मैं कलापग्राम तो गया ही नहीं। वहाँ ८४ हजार विद्वान् ब्राह्मण नित्य तपस्या करते हैं। सूर्य-चन्द्र वंश एवं सद्ब्राह्मणों के पुनः प्रवर्त्तक देवापि और मरुत वहीं रहते हैं।' यों विचारकर वे आकाशमार्ग से कलापग्राम पहुँचे। वहाँ उन्होंने बड़े तेजस्वी, विद्वान् एवं कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को देखा। उन्हें देखकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। ब्राह्मण जहाँ बैठे शास्त्र-चर्चा कर रहे थे, वहाँ जाकर नारदजी ने कहा :

''आप लोग यह क्या काँव-काँव कर रहे हैं ? यदि कुछ समझने की शक्ति है तो मेरे कठिन प्रश्नों का समाधान कीजिए।''

यह सुनकर ब्राह्मण अचंभे में पड़ गये और बोले : ''वाह ! सुनाओ तो जरा अपने प्रश्नों को।''

नारदजी ने कहा : ''मेरे बारह प्रश्न इस प्रकार हैं : १. मातृका क्या और कितनी हैं ? २. पच्चीस वस्तुओं से बना अद्‌भुत गृह क्या है ? ३. अनेक रूपोंवाली स्त्री को एक रूपवाली बनाने की कला का ज्ञान किसको है ? ४. संसार में विचित्र कथा की रचना करना कौन जानता है ? ५. समुद्र में बड़ा ग्राह कौन है ? ६. आठ प्रकार के ब्राह्मण कौन हैं ? ७. चार युगों के आरंभ के दिन कौन-से हैं ? ८. चौदह मन्वन्तरों का आरंभ किस दिन हुआ ? ९. सूर्यनारायण रथ पर पहले-पहल किस दिन बैठे ? १०. काले साँप की तरह प्राणियों का उद्वेजक कौन है ? ११. इस घोर संसार में सबसे बड़ा चतुर कौन है ? १२. दो मार्ग कौन-से हैं ?''

नारदजी के प्रश्नों को सुनकर वे मुनि कहने लगे : ''मुने ! आपके ये प्रश्न तो बालकों के प्रश्न जैसे हैं । आप यहाँ जिसे सबसे छोटा एवं मूर्ख समझते हों, उसीसे पूछिये । वही इनका उत्तर दे देगा ।''

अब नारदजी बड़े विस्मय में पड़ गये ! उन्होंने एक बालक से, जिसका नाम सुतनु था, ये प्रश्न पूछे : सुतनु ने कहा : ''इन बालोचित प्रश्नों के उत्तर में मेरा मन नहीं लगता । फिर भी आपने मुझे सबसे छोटा एवं मूर्ख समझा है, इसलिए कहना पड़ता है । आपके प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं :

१. अ, आ, इ, ई... वगैरह बावन अक्षर ही मातृका हैं। २. पच्चीस तत्त्वों से बना हुआ गृह यह शरीर ही है। ३. बुद्धि ही अनेक रूपोंवाली स्त्री है। जब इसके साथ धर्म का संयोग होता है तब यह एकरूपा हो जाती है। ४. विचित्र रचनायुक्त कथन करना पण्डित ही जानते हैं। ५. इस संसारसागर में लोभ ही महा ग्राह है। ६. मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि - ये आठ प्रकार के ब्राह्मण हैं। इनमें जो केवल ब्राह्मणकुल में उत्पन्न है और संस्कार आदि से हीन है, वह 'मात्र' है। कामनारहित होकर सदाचारी, वेदोक्त कर्मकाण्डी ब्राह्मण 'ब्राह्मण' कहा जाता है। वेद-वेदांगों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर षट्‌कर्मपरायण ब्राह्मण 'श्रोत्रिय' है। वेद का पूर्ण तत्त्वज्ञ, शुद्धात्मा, केवल शिष्यों को अध्यापन करानेवाला ब्राह्मण 'अनूचान' है। यज्ञावशिष्ट भोजी पूर्वोक्त अनूचान ही 'भ्रूण' है। लौकिक, वैदिक समस्त ज्ञान से परिपूर्ण, जितेन्द्रिय ब्राह्मण 'ऋषिकल्प' है। ऊर्ध्वरेता, निःसंशय, शापानुग्रह-सक्षम, सत्यसन्ध ब्राह्मण 'ऋषि' है। सदा ध्यानस्थ, मृत्तिका और सुवर्ण में तुल्य दृष्टिवाला ब्राह्मण 'मुनि' है।

अब सातवें प्रश्न का उत्तर सुनिये। कार्तिक शुक्ल नवमी को सतयुग का, वैशाख शुक्ल तृतीया को त्रेता का, माघ कृष्ण अमावस्या को द्वापर का और भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी को कलियुग का आरंभ हुआ। अतः उक्त तिथियाँ युगादि कही जाती हैं।

८. आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्रपद शुक्ल तृतीया, फाल्गुन कृष्ण अमावस्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ़ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा और ज्येष्ठ की पूर्णिमा- ये स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरों की आदि तिथियाँ हैं।

९. माघ शुक्ल सप्तमी को पहले-पहल भगवान सूर्य रथ पर सवार हुए थे।

१०. सदा माँगनेवाला ही उद्वेजक है।

११. पूर्ण चतुर या दक्ष वही है, जो मनुष्य जन्म का मूल्य समझकर इससे अपना पूर्ण निःश्रेयसादि सिद्ध कर लेता है।

१२. 'अर्चि' और 'धूम' ये दो मार्ग हैं। अर्चि मार्ग से जानेवालों का मोक्ष होता है और धूममार्ग से जानेवालों को पुनः लौटना पड़ता है।

इन उत्तरों को सुनकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और उस बालक को धर्मवर्मा से प्राप्त अपनी भूमि, सात लाख गौएँ आदि सब दान कर दिया।

महात्मा सुकरात

महात्मा सुकरात एक स्वतंत्र प्रतिभा का नाम है जिसने सत् में रहना और सत् कहना जाना। उनके लिए जीवन और मृत्यु समान थे।

ईसा से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व यूनान देश के एथेंस नामक शहर में सुकरात नाम के महापुरुष हो गये हैं। वे पहले एक सैनिक थे। कवायद के समय एक बार वे गिर पड़े और चौबीस घंटे बेहोश रहे। होश आने पर उनमें विचित्र चेतना जागी।

सत्य का प्रचार

वे जीवन, मृत्यु, सत्य, विवेक, अमरता आदि के विषय में जानना चाहते थे। वे विचित्र जिज्ञासु थे। पथों, बाजारों, हाटों, चौपालों में लोगों से सत्य के विषय में प्रश्न कर-करके उन्हें झकझोरते रहते थे।

उन्हें समसामयिक रूढ़ियों में काफी अन्धकार दिखाई दिया, अतः वे पण्डितों, पुरोहितों, सामन्तों और महन्तों को ललकारने लगे। अन्धविश्वासों से उनका कट्टर विरोध था। वे सत्य कहने में कभी दबते नहीं थे।

सुकरात शरीर से कोई सुन्दर नहीं थे। छोटा कद, बड़ा-सा बेढंगा सिर, भीतर धँसी हुई बड़ी-बड़ी आँखें, चिपटी नाक, परन्तु बौद्धिक व्यक्तित्व विशाल था। वे ढीला-ढाला एवं सादा कपड़ा पहनते, एक बेढंगी लकड़ी हाथ में रखते तथा कंधे पर एक मोटी-सी गुदड़ी।

वे विवाहित थे। उनके तीन बच्चे थे। उनकी पत्नी का नाम झेन्टीप था। वह बड़ी कर्कशा थी। सुकरात धन की परवाह नहीं करते थे इसलिए उनकी कोई अच्छी कमाई नहीं थी। इन सबके कारण उनकी पत्नी उनसे बहुत नाराज रहती थी।

जिस एथेंस शहर में वे रह रहे थे, उसमें उनकी काफी ख्याति हो गई थी परन्तु धनवान् और महंत लोग उनके दुश्मन बन गये थे, क्योंकि सुकरात उनकी गलतियों को क्षमा न करके उन पर करारी चोट करते थे। एथेंसवासी युवकों से प्रश्न कर-करके उन्होंने एक हलचल मचा दी थी। निष्पक्ष लोग उनके तर्कों से प्रभावित होकर उनके भक्त हो जाते थे और गद्दार लोग जल जाते थे।

एक बार डेल्फी के ओरेकल (भविष्यवक्ता) ने सुकरात को उस समय का सर्वोच्च बुद्धिमान् व्यक्ति घोषित किया। यह सुनकर सुकरात जोर से हँसे और उन्होंने कहा : ''मुझसे अधिक योग्य इसी शहर (एथेंस) में कितने ही लोग हैं। मैं यही जानता हूँ कि मैं बुद्धिमान् बिल्कुल नहीं हूँ।''

सुकरात सत्य के अन्वेषक थे। ईश्वर के विषय में फैली हुई तत्कालीन धारणा के वे एकदम विरुद्ध थे। वे कहते थे : ''परम सत्य को मैं केवल सत्य कह सकता हूँ। उसके विषय में तमाम बचकानी बातें करना बेकार है।''

जब लोग सुकरात से पूछते : ''पृथ्वी कैसे बनी ? मनुष्य क्यों है ? मृत्यु के बाद क्या होगा ?'' तब वे कहते : ''इन बातों में उलझने से क्या काम ? तुम हो, यह परम सत्य है। तुम अपने और पराये का कल्याण कैसे कर सकते हो, यह मुख्य प्रश्न है।''

वे सदाचारी, निर्भय और सत्यव्रती थे। वे सत्ताधारियों, पुरोहितों, महंतों तथा भ्रष्ट लोगों के तीव्र आलोचक थे। उनके आकर्षक तर्कों से मुग्ध होकर जनता एवं युवकों का दल उन्हें हर

समय घेरे रहता था। उनकी कठोर कसौटी में जो खरा नहीं उतरता था उसे फटकारे बिना वे नहीं रहते थे।

धर्माधिकारी विलासी थे। वे सरल जनता से मोटी रकम लेकर उन्हें 'स्वर्ग का प्रमाण-पत्र' देते थे। धर्म अन्धविश्वासों से ढँका था तथा राजनीति स्वार्थ से। इस बीच केवल सत्य के उपासक सुकरात भला चैन से कैसे रह सकते थे ?

सत्ताधारी उनसे चिढ़ गये। उन्होंने सुकरात को बुलाकर कहा : ''तुम युवकों से प्रश्न मत करो तथा किसी प्रकार का प्रचार न करो।'' इस बात का इस्तिहार भी शहर में लगवा दिया गया और मुनादी भी हुई परन्तु सुकरात ने सत्ताधारियों से कहा : ''क्या मैं अपने विचारों को व्यक्त करने में परतंत्र हूँ ? क्या मैं उन मूर्ख और भ्रष्ट अधिकारियों के पीछे चलूँगा ? यह असम्भव है।''

अधिकारियों ने सुकरात को पुनः सावधान किया कि यदि तुमने अपना प्रचार बन्द नहीं किया तो मौत के घाट उतार दिये जाओगे। परन्तु जो शरीर को अपना स्वरूप नहीं समझता, उसको मौत का क्या डर ? वे अब भी युवकों को सत्य का खोजी होने की राय देते थे और कहते थे कि कभी किसी अन्धविश्वास में मत पड़ो। असत्य का भण्डाफोड़ करना हर नागरिक का कर्त्तव्य है।

समसामयिक यूनान के दार्शनिक जो यह मानते थे कि हमने संसार की रचना का मूल तत्त्व समझ लिया है, सुकरात ने अपने प्रबल तर्कों द्वारा उनकी पोलपट्टी खोलकर रख दी थी। वे अन्धभक्ति, अन्धपूजा तथा अन्धविश्वास के कट्टर विरोधी थे। अतः अहंकारी लोग जो समाज के द्वारा गलत ढंग से पूजे जा रहे थे, वे जल उठे और सुकरात की हत्या के विषय में योजनाएँ बनाने लगे।

अपराध का आरोप

एक दिन प्रातःकाल नगरवासियों ने देखा कि सत्ता की ओर से नगर में इस्तिहार चिपकाया गया है : ''सुकरात पर नीचे लिखा हुआ अपराध लगाया जाता है : वह मान्य देवी-देवताओं के विरुद्ध प्रचार करता है तथा युवावर्ग को बहकाता है। इसकी सजा केवल प्राणदण्ड है।''

सुकरात सत्तर वर्ष के हो चुके थे। उन्होंने इस्तिहार पढ़ा परन्तु वे द्वन्द्वातीत थे। नगर का सज्जन समुदाय दुःखी था, खल समुदाय प्रसन्न था। पूरे नगर में निश्चिन्त केवल एक व्यक्ति थे और वह थे सुकरात। उन्हें अपने पर लगाये गये दोषों की सफाई देने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनका पूरा जीवन ही साफ था।

सुकरात के अपराध का निर्णय करने के लिए बावन नागरिकों की एक सभा बैठी। उसके बीच में सुकरात ने अपना गम्भीर भाषण दिया :

''संसार को एक सिद्धान्त में बाँधा नहीं जा सकता। हम इसकी एक झलक अपने अंतर की गहराई में बैठकर पा सकते हैं। मनुष्य का असली स्वरूप यह हाड़-मांस का ढाँचा नहीं है। उसका सच्चा स्वरूप तो 'मैं' के रूप में विद्यमान यह चेतन सत्ता है। हमें भौतिकता में न रमकर आध्यात्मिक सुख की अनुभूति करनी चाहिए। हमें अपने आपको इन्द्रियों के भ्रम तथा शब्दों के जाल से मुक्त रखना चाहिए। हममें ईमानदारी तथा सत्य के लिए अविचल निष्ठा होनी चाहिए। भौतिक तथा नश्वर भोगों में फँसकर हमें अपने आत्मसुख को नहीं खोना चाहिए। शरीर नाशवान् है, आत्मा अजर-अमर है। आत्मा के सहारे देह चलती है। हमें वही वस्तुएँ स्वीकार्य होनी चाहिए जिनसे हमारी आत्मा ऊपर उठे। भौतिक आकर्षणों के पीछे भटकता हुआ व्यक्ति व्यामोहित है। उसका विवेक सोया हुआ है। सही साधनों द्वारा सत्य का अन्वेषण करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। निष्पक्ष बनो। अपने को टटोलो कि हम सत्य के पथ पर हैं कि नहीं। मैं सत्य का खोजी हूँ। मैं अपने विषय में पूर्ण होने का दावा नहीं करता हूँ।''

मृत्यु-दण्ड

सुकरात के उपर्युक्त वक्तव्यों से राजनीतिज्ञों को संतोष नहीं हुआ । उन लोगों ने पूछा : ''तुम्हें कौन-सा दण्ड मान्य होगा ?''

सुकरात ने कहा : ''एथेंस की जनता को मेरा उपकार मानना चाहिए, क्योंकि मैंने उन्हें अन्धविश्वासों से मुक्त होने का रास्ता दिखाया है।'' यह सुनकर अधिकारीगण और अधिक जल उठे और सुकरात को जहर देकर मार डालने की आज्ञा दे दी।

''कौन जानता है कि मृत्यु और जीवन में श्रेष्ठ कौन है ?'' यह कहकर सुकरात ने निश्चिन्त भाव से आज्ञा सुन ली। उन्हें कारागार में ले जाया गया। उनके भक्त भी उनके साथ गये, उन्हें घेरे रहे। सुकरात उस समय भी अपनी मस्ती में, तत्त्वचर्चा में निमग्न थे।

सुकरात मृत्यु की महत्ता तथा आत्मा की अमरता पर भाषण दे रहे थे। उनके साथी उनके भाषण-श्रवण में तल्लीन थे। सुकरात कह रहे थे :

''जीवन मुझे जितना प्रिय है, मृत्यु भी उतनी ही प्रिय है।''

उनकी पत्नी झेन्टीप आयी। वह सुकरात से सदा उलझती रही परन्तु सुकरात के प्रति उसकी श्रद्धा कम नहीं थी। वह चिल्लाकर रो पड़ी। सुकरात ने उसे अपने शिष्यों द्वारा घर भिजवा दिया और सत्संग-चर्चा में निमग्न हो गये।

उनके भक्तों ने उन्हें जेल से निकल भागने का प्रबन्ध कर दिया परन्तु सुकरात नहीं भागे, क्योंकि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था।

वह घड़ी आ गयी। जेलर हलाहल विष (प्राणघातक भयंकर जहर) का प्याला लेकर आया। सुकरात ने पूछा :

''मुझे क्या करना चाहिए ?''

जेलर ने कहा : ''इसे पी लें और कुछ समय तक घूमते रहें। जब पैर लड़खड़ाने लगे तब लेट जायें।''

जेलर ने विष का प्याला सुकरात को पकड़ाते समय अपना मुख पीछे कर लिया और उसकी आँखें आँसुओं से तर हो गयीं परन्तु सुकरात प्रसन्नमुख होकर विष को एक ही बार में पी गये।

विष पीकर सुकरात घूम रहे थे और शिष्यों को अपना अमृतोपदेश सुना रहे थे : ''मैं अमर हूँ। शरीर मरेगा, मैं नहीं मर सकता।'' इस प्रकार वे तत्त्वचर्चा कर रहे थे। अन्ततः उनके पैर लड़खड़ाने लगे और वे लेट गये।

उन्होंने कहा : ''मैं इस संसार को छोड़ रहा हूँ। जो कुछ मैंने यहाँ देखा, उससे अधिक कुछ नहीं हो सकता। मेरा समय आ गया है। मुझे छुट्टी मिल चुकी है। मैं आशापूर्ण हृदय से जा रहा हूँ। ऐ मेरी मृत्यु ! तू मेरे जीवन की पूर्णता है। मैं तेरी प्रतीक्षा में हूँ। तुझसे मिलने के लिए मेरी आत्मा छटपटा रही है।''

महात्मा सुकरात इस दुनिया से अनासक्त थे। उन्होंने आँखें मूँद लीं और वे मौन हो गये।

सुकरात की महानता

जहर देनेवाले मर गये। आज उनको कोई नहीं जानता परन्तु जहर पीकर सुकरात करोड़ों लोगों के हृदयों में जी गये और वे आज भी जीते हैं। जब तक मानवता का इतिहास जीवित रहेगा, सुकरात जीते रहेंगे। उनकी आत्मा की उत्तम गति हुई है।

सुकरात एक महान् व्यक्तित्वसंपन्न पुरुष थे। वे चाहते तो जेल से निकलकर भाग सकते थे परन्तु वे जेल में ही डटे रहे। उनके लिए जीवन तथा मरण बराबर थे। ऐसे महान् पुरुष संसार में कभी-कभी आते हैं। सुकरात के जीवन-दर्शन और विचारों ने यूनान का बौद्धिक तथा नैतिक स्तर ऊँचा उठा दिया। यूनान के महान् दार्शनिक प्लेटो सुकरात के पट्टशिष्य थे। प्लेटो के बाद

सुकरात के दूसरे शिष्य जेनोफन थे। उन्होंने सुकरात के विषय में महत्त्वपूर्ण विवरण लिखकर संसार को दिया है।

सुकरात ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। सुकरात के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह प्लेटो तथा जेनोफन ने लिखा है। वस्तुतः सुकरात का सच्चा जीवन ही उनके विचारों को पढ़ने की पोथी है। सत्य की वेदी पर जो उन्होंने अपना बलिदान किया, इससे वे संसार में और अधिक चमक गये। (संकलित)

छः घण्टे बाद दर्शन

[श्री रंग अवधूत जयंती दिनांक : १७ नवम्बर '९९]

गुजरात में एक उच्च कोटि के संत हो गये हैं। उनका नाम था श्री रंग अवधूतजी महाराज। एक बार मुंबई के भक्तों ने उनके दर्शन के लिए उन्हें मुंबई बुलाने का बड़ा प्रयास किया एवं अंत में बाबाजी मुंबई जाने के लिए राजी हो गये।

निर्धारित दिन को सुबह ६ बजे भक्त लोग कार लेकर बाबाजी के पास पहुँच गये ताकि १२ बजे तक बाबाजी मुंबई पहुँच जायें।

इधर मुंबई के उनके भक्तों में खुशी की लहर छा गयी कि दोपहर बारह बजे बाबाजी के दर्शन होंगे। बारह बजे... एक बजा... दो बज गये फिर भी बाबाजी नही पधारे तो कुछ भक्त घर जाने लगे और कुछ ऑफिस में हाजिरी लगाने चले गये। जब वे लोग अपने काम को निपटाकर शाम को छः बजे वापस दर्शन-स्थल पर लौटे तो जो लोग वहाँ बैठे ही रहे थे, उनसे बोले : ''हम लोग तो अपना काम निपटाकर आ गये और आप लोग दोपहर से अभी तक ऐसे ही बैठे हैं ?''

उन बेचारों को तो पता ही नहीं था कि संतों के दर्शन की आस में पलकें बिछाये रखने से क्या लाभ होता है।

शाम के छः बजे बाबाजी आये। थोड़ी देर मंच पर बैठे और बोले : ''हो गया दर्शन ? अब मैं

जाता हूँ।''

लोगों ने कहा : ''बाबाजी ! कई महीनों से हम प्रार्थना कर रहे थे और आज भी छः-छः घण्टों से इन्तजार किया। अतः आप कम-से-कम ३ घण्टे तो रुकें ! ३ घण्टे नहीं तो कम-से-कम दो घण्टे, एक घण्टा तो रुकें ?''

बाबाजी : ''आप लोग मुझे संत मानते हैं ?''

लोग : ''हाँ, मानते हैं।''

बाबाजी : ''आपको छः घण्टे के इन्तजार के बाद संत के दर्शन हो गये। मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ। आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं। मुझे तो सात साल के बाद संत मिले थे और आपको छः घण्टों में ही मिल गये।''

ऐसे संतों की महिमा का बयान भला हम कैसे कर सकते हैं ? संत सुंदरदासजी कहते हैं :

अड़सठ तीरथ जो फिरे, कोटि यज्ञ व्रत दान।
'सुंदर' दरसन साधु के, तुलै नहीं कछु आन॥

चाहे अड़सठ तीर्थ कर लो, चाहे करोड़ों यज्ञ, व्रत और दान ही क्यों न कर लो किन्तु ये सब मिलकर भी संतदर्शन की बराबरी नहीं कर सकते।

चाहे अड़सठ तीर्थ कर लो, चाहे करोड़ों यज्ञ, व्रत और दान ही क्यों न कर लो किन्तु ये सब मिलकर भी संतदर्शन की बराबरी नहीं कर सकते।

ऐसी दिव्य महिमा है संतदर्शन की !

कबीरा दर्शन संत के, साहिब आवे याद।
लेखे में वो ही घड़ी, बाकी के दिन बाद॥

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

सब कुछ आप ही हो

यह ध्यान रखें कि परमात्मा सर्व ऐश्वर्यों से युक्त एवं आनंदस्वरूप है और वह हमारे ही पास हृदयरूपी गुफा में विराजमान है। आनंद कहीं बाहर से प्राप्त नहीं होता और न ही किसी बाह्य पदार्थ से मिलता है। वृत्ति के शांत होने पर आनंदस्वरूप परमात्मा की झलक दिखने से आनंद आता है एवं वृत्ति के चंचल होने पर आनंद जाता हुआ दिखाई देता है, परन्तु वह कहीं जाता नहीं है। आनंदस्वरूप परमात्मा के अज्ञान से आनंद जाता हुआ भासित होता है। ज्ञान होने पर उस सदा प्राप्त परमात्मा की ही प्राप्ति होती है। किसी अप्राप्त की प्राप्ति नहीं होती है। आत्मा से पृथक् दूसरा कुछ है ही नहीं। सब परमात्मामय ही है।

आप जिसे खोजते हो वह आप ही हो- ऐसा निश्चित मानना। आप और ईश्वर कहीं अलग नहीं हो। उसी प्रकार मैं और आप भी अलग नहीं, एक ही हैं। उपाधि-भेद से ही अलग भासते हैं। ईश्वर, गुरु और आत्मा एक ही हैं। आप ही आनंदघन सच्चिदानंदस्वरूप हो। आप स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह और महा कारण देह नहीं, अपितु उसे जाननेवाले, सिद्ध करनेवाले तथा प्रकाशित

करनेवाले आप स्वयं ही हो। चंद्र, सूर्य, ग्रह आदि सभी को प्रकाशित करेनवाले आप ही हो। सत्यस्वरूप के अज्ञान से ही स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर को अपना स्वरूप मान लिया है, किन्तु वह सत्य नहीं है।

वास्तविकता तो यह है कि जिसे आप 'मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ' करके ढूँढ़ते हो, वही आप स्वयं हो। जो कुछ भी यह दृश्यादृश्य है वह भी आपका ही स्वरूप है, दूसरा कुछ नहीं। बंधन अज्ञान से ही है। आप तो सदा मुक्त हो, कल्याणस्वरूप हो। आप स्वयं मोक्षस्वरूप हो, अतः मोक्ष के लिए चिंता करना ही वृथा है। जो कुछ भी है, वह सभी आप ही हो, आप ही हो। आपकी महिमा अपार और अगाध है। वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता है।

*

महापुरुषों की वाणी : मौन

* मौन ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का भूषण है। – भर्तृहरि

* मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है। – कार्लाइल

* आपत्ति में मौन रहना अति श्रेयस्कर है। –ड्राइडेन

* जैसे घोंसला सोती हुई चिड़ियों को आश्रय देता है वैसे ही मौन तुम्हारी वाणी को आश्रय देता है। – रवीन्द्रनाथ टैगोर

* क्रोध को जीतने में मौन जितना सहायक होता है, उतनी और कोई भी वस्तु नहीं है।

जहाँ तक हो सके वहाँ तक मौन ही रहना चाहिए। बेकार का कभी एक भी शब्द नहीं बोलना चाहिए। एक शब्द से काम चले तो दो नहीं बोलना चाहिए।

कम बोलनेवाला बोलने में अविचारी नहीं होता। वह हर शब्द को तोलता है।

मौन में अन्तर्शक्ति को जानने की अधिक क्षमता होती है। मौन के द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण करना आसान हो जाता है।

मौन से कलह का नाश होता है।

बोलना एक सुंदर कला है। मौन उससे भी ऊँची कला है।

कभी-कभी मौन कितने ही अनर्थों को रोकने का अमोघ उपाय हो जाता है। – महात्मा गाँधी

* सुषुप्त शक्तियों को विकसित करने का अमोघ साधन है मौन। योग्यताएँ विकसित करने के लिए मौन जैसा सुगम साधन हमने अन्य कोई नहीं देखा। – पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जब महाभारत का अंतिम श्लोक महर्षि वेदव्यास के मुखारविंद से निःसृत होकर गणेशजी के सुपाठ्य अक्षरों में भोजपत्र पर अंकित हो चुका तब गणेशजी से महर्षि ने कहा : ''विघ्नेश्वर! धन्य है आपकी लेखनी! महाभारत का सृजन तो वस्तुतः आपने किया है परन्तु एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है और वह है आपका मौन। सुदीर्घ काल तक आपका हमारा साथ रहा। इस अवधि में मैंने तो १५-२० लाख शब्द लिखा डाले, परन्तु आपके मुख से मैंने एक भी शब्द नहीं सुना।''

इस पर गणेशजी ने मौन की व्याख्या करते हुए कहा : ''बादरायणजी! किसी दीपक में अधिक तेल होता है, किसीमें कम, परन्तु तेल का अक्षय भंडार किसी दीपक में नहीं होता। उसी प्रकार देव, दानव, मानव आदि जितने भी तनुधारी हैं, सबकी प्राणशक्ति सीमित है। किसीकी कम है, किसीकी कुछ अधिक परन्तु असीम किसीकी भी नहीं। इस प्राणशक्ति का पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयम से उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयम का प्रथम सोपान है वाचोमुक्ति अर्थात् वाक्संयम। जो वाणी का संयम नहीं करता, उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलनेवाली जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह एवं वैमनस्य उत्पन्न करते हैं जो हमारी प्राणशक्ति को सोख लेते हैं।''

बाल्यकाल से ही भक्ति का प्रारंभ

[नानक जयंती दिनांक : २५ नवम्बर '९९]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सावन का महीना था। काली अंधेरी अमावस की रात्रि के बारह बजे थे। माँ ने झाँका तो देखा कि पुत्र अभी तक बैठा हुआ है, सोया नहीं है।

माँ : ''मेरे लाल ! रात बीती जा रही है। सब अपने-अपने बिस्तरों पर खुर्राटें भर रहे हैं। पक्षी भी अपने घोंसले में आराम कर रहे हैं। बेटा ! तू कब तक जागता रहेगा ? जा, अब तू भी सो जा।''

भगवान की याद में डूबे हुए उस लाल ने अपनी दरी बिछायी और ज्यों लेटने को गया, त्यों पपीहा बोल उठा : ''पिहूऽऽऽ... पिहूऽऽऽ...'' यह सुनकर उसने बिछायी हुई दरी फिर से लपेटकर रख दी और अपने प्रभु को पुकारने बैठ गया।

माँ : ''क्या हुआ लाल ! सो जा। बहुत रात हो गयी है।''

पुत्र : ''माँ ! तुम सो जाओ। मैं अभी नहीं सो सकता। पपीहा अपने पिया को पुकारे बिना नहीं रहता तो मैं अपने प्रियतम प्रभु को कैसे भुला सकता हूँ ?''

सोलह वर्ष, छः महीने और पंद्रह दिन का वही बालक आगे चलकर गुरु नानकदेव के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

जो अनन्य भाव से परमात्मा का चिंतन करता है वह अवश्य महान् बनता है और ऐसा नहीं कि बड़े होकर ही भजन किया जाये। ना ना... भजन तो बाल्यकाल से ही आरंभ कर देना चाहिए। प्रह्लाद, ध्रुव, उद्धव, मीरा, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, पूज्यपाद लीलाशाहजी महाराज आदि सभी ने बाल्यकाल से ही भक्ति करना आरंभ कर दिया था। आगे चलकर वे कितने महान् बने, दुनिया जानती है।

गुरु नानकजी के पास कथा में एक लड़का प्रतिदिन आकर बैठ जाता था। एक दिन नानकजी ने उससे पूछा :

''बेटा ! कार्तिक के महीने में सुबह इतनी जल्दी आ जाता है, क्यों ?''

वह बोला : ''महाराज ! क्या पता कब मौत आकर ले जाये ?''

नानकजी : ''इतनी छोटी-सी उम्र का लड़का ! अभी तुझे मौत थोड़े मारेगी ? अभी तो तू जवान होगा, बूढ़ा होगा, फिर मौत आयेगी।''

लड़का : ''महाराज ! मेरी माँ चूल्हा जला रही थी। बड़ी-बड़ी लकड़ियों को आग ने नहीं पकड़ा तो फिर उन्होंने मुझसे छोटी-छोटी लकड़ियाँ मँगवायी। माँ ने छोटी-छोटी लकड़ियाँ डालीं तो उन्हें आग ने जल्दी पकड़ लिया। इसी तरह हो सकता है मुझे भी छोटी उम्र में ही मृत्यु पकड़ ले। इसीलिए मैं अभी से कथा में आ जाता हूँ।''

नानकजी बोल उठे : ''है तो तू बच्चा, लेकिन बात बड़े-बुजुर्गों की तरह करता है। अतः आज से तेरा नाम 'भाई बुड्ढा' रखते हैं।''

उन्हीं भाई बुड्ढा को गुरु नानक के बाद उनकी गद्दी पर बैठनेवाले पाँच गुरुओं को तिलक करने का सौभाग्य मिला। बाल्यकाल में ही विवेक था तो कितनी ऊँचाई पर पहुँच गये ! शास्त्र में आता है :

निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्यात् हरेर्नामैव केवलम् ॥

'इस श्वास का कोई भरोसा नहीं है कब रुक जाये। अतः बाल्यकाल से ही हरि के ज्ञान-ध्यान व कीर्तन में प्रीति करना चाहिए।

*

स्वभाषा का प्रयोग करें

मार्गरेट नोबल आयरलैण्ड की एक महिला थी जो बाद में स्वामी विवेकानंद की शिष्या बनी और भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मिदनापुर में स्वामीजी का भाषण चल रहा था। सब मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। कुछ युवकों ने हर्ष से 'हिप-हिप हुर्रे...' का उद्घोष किया।

इस पर स्वामीजी ने भाषण बीच में रोककर उन्हें डाँटते हुए कहा कि : ''चुप रहो। लज्जा आनी चाहिए तुम्हें। क्या तुम्हें अपनी भाषा का तनिक भी गर्व नहीं ? क्या तुम्हारे पिता अंग्रेज थे ? क्या तुम्हारी माँ गोरी चमड़ी की यूरोपियन थी ? अंग्रेजों की नकल क्या तम्हें शोभा देती है ?''

यह सुनकर युवक स्तब्ध रह गये। सबके सिर झुक गये। फिर भगिनी निवेदिता ने कहा कि : ''भाषण की कोई बात अच्छी लगे तो स्वभाषा में बोला करो। सच्चिदानंद परमात्मा की जय... भारत माता की जय... सद्गुरु की जय...' युवकों ने तत्काल उस निर्देश का पालन किया।

भारत में प्राचीन काल से ही प्रसन्नता के ऐसे अवसरों पर 'साधो-साधो' कहने की प्रथा थी जो पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से लुप्त हो गयी। अंग्रेज तो चले गये, पर अंग्रेजी नहीं गई। अंग्रेजों की गुलामी से तो मुक्त हुए, पर अंग्रेजी के गुलाम हो गये।

अतः स्वतंत्र भारत के परतंत्र नागरिकों से निवेदन है कि वे भगिनी निवेदिता के वचनों को याद रखें, स्वभाषा का प्रयोग करें।

क्या गुरु बनाना आवश्यक है ?

ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री अखण्डानंद सरस्वतीजी महाराज से किसीने पूछा : ''क्या मनुष्य को आत्मिक सुख व शांति के लिए गुरु बनाना आवश्यक है ?''

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा : ''भाई साहब ! जब आपको कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती है, तब आप क्यों इस चक्कर में पड़ते हैं ? हाँ, जब आपके भीतर से आवाज आये कि 'गुरु बनाने की जरूरत है...' तब बना लेना। देखो कि आपको संतोष कहाँ है। यदि गुरु न बनाने का संतोष आपके मन में होता, तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि गुरु बनाना आवश्यक है कि नहीं।

गुरु बनाना कोई बहुत आसान बात नहीं है कि जिस किसीने कोई मंत्र बता दिया, जप बता दिया और आप उस रास्ते पर चल पड़े। जब सत्संग करेंगे तब समझेंगे कि गुरु क्या होता है, शिष्य क्या होता है और दोनों का सम्बन्ध क्या होता है। यह बात समझनी पड़ेगी।

आखिर पति-पत्नी का ब्याह ही तो होता है ना ? कहाँ वे एक साथ पैदा होते हैं, कहाँ-कहाँ से आते हैं, मिलते हैं, साथ रहते हैं फिर भी पति-पत्नी का इतना गम्भीर सम्बन्ध हो जाता है कि एक-दूसरे के लिए मरते हैं। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी इससे कुछ हल्का नहीं है। यह तो

उससे भी गम्भीर है, बहुत गम्भीर है। जैसे पति-पत्नी के सम्बन्ध का निर्वाह करना कठिन होता है, वैसे ही गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का भी निर्वाह करना कठिन होता है।

"...तो, जब तक गुरु की आवश्यकता स्वयं को नहीं मालूम पड़ती, तब तक दूसरे के बताने से क्या होगा ? ...और वैसे देखो तो आवश्यकता का प्रमाण यही है कि आप पूछ रहे हैं : 'गुरु बनाने की आवश्यकता है क्या ?' कहीं-न-कहीं चित्त में खटका होगा, कहीं-न-कहीं संस्कार भी होगा ही। ...तो, जब तक आपको कुछ पूछने की, कुछ जानने की जरूरत है, कुछ होने की, कुछ बनने की जरूरत है, जब तक आपके मन में किसी वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रश्न है तब तक आपको किसी जानकार से उसके बारे में सच्चा ज्ञान और सच्चा अनुभव प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।''

सिर्फ उपदेश करनेवाले का नाम 'गुरु' नहीं होता है। गुरु तो वे हैं, जो तुमको गुरु बना दें और तुम लोगों को भगवान का दर्शन करा सकें। गुरु की महिमा अद्भुत है !

प्रश्न : ''संत भगवद्स्वरूप हैं और संत में ही गुरु-भगवान निवास करते हैं, यह बात कृपया समझाएँ।''

उत्तर : ''देखो भाई ! संत तो बहुत-से होते हैं- हजार, दो हजार, दस हजार, लाख। सन्मात्र भगवान किसमें प्रकट नहीं हैं ? अर्थात् सबमें हैं। परन्तु संत और गुरु में फर्क यह होता है कि जैसे गण्डकी नदी में, उसके उद्गम के पास बहुत-से गोल-गोल पत्थर मिलते हैं, वे सब शालिग्राम हैं। जब हम अपने लिए शालिग्राम ढूँढ़ने के लिए जाते हैं, तब कई शालिग्राम हमारे पाँव के नीचे आते हैं और कइयों को उठाकर हम हाथ में लेकर फिर छोड़ भी देते हैं। ...तो जैसे, गण्डकी की शिलाएँ सब शालिग्राम होने पर भी हम अपनी पूजा के लिए एक शालिग्राम चुनकर लाते हैं इसी प्रकार हजारों-लाखों, अनगिनत संतों के होने पर भी उनमें से हम अपनी पूजा के लिए, अपनी उपासना के लिए, अपने ज्ञान-ध्यान के लिए किसी एक संत को चुन लें तो इन्हीं संत का नाम 'गुरु' होता है।

पुरुष सब हैं, पर कन्या का ब्याह एक से ही होता है न ? अब जो यह एक गुरु के साथ सम्बन्ध की बात है, वहाँ भगवान गुरु के द्वारा मिलते हैं।

एक सज्जन थे। वे एक पण्डितजी के पास जाकर उनको बहुत परेशान करते थे कि : 'हमको दीक्षा दे दो... हमको भगवान का दर्शन करा दो...' पण्डितजी रोज-रोज सुनते-सुनते थक गये और चिढ़कर उन्होंने भगवान का एक नाम बता दिया और कहा कि यह नाम लिया करो। अब वे सज्जन रोज आकर पूछने लगे कि : ''हम ध्यान कैसे करें ? भगवान कैसे होते हैं ?''

अब पण्डितजी और चिढ़ गये एवं बोले : ''भगवान बकरे जैसे होते हैं।''

अब वे सज्जन जाकर बकरे भगवान का ध्यान करने लगे। उनके ध्यान से, उनकी निष्ठा से और गुरुआज्ञा-पालन से भगवान उनके पास आये और बोले : ''लो भाई, जिसका तुम ध्यान करते हो, वह मैं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी-पीताम्बरधारी तुम्हारे सामने खड़ा हूँ।''

इस पर वे सज्जन बोले : ''हमारे गुरुजी ने तो बताया था कि भगवान बकरे की शक्ल के होते हैं और तुम तो वैसे हो नहीं। हम तुमको भगवान कैसे मानें ?''

अब तो भगवान भी दुविधा में पड़ गये। फिर बोले : ''अच्छी बात है... लो, हम बकरा बन जाते

हैं। तुम उसीको देखो और उसीका ध्यान करो।''

अब भगवान उसके सामने ही बकरा बन गये और उससे बात करने लगे। फिर वे सज्जन बोले :

''देखो, मुझे तुम बहुरूपिया मालूम पड़ते हो। कभी आदमी की तरह तो कभी बकरे की तरह। हम कैसे पहचानें कि तुम भगवान हो कि नहीं ? इसलिए हमारे गुरुजी के पास चलो। जब वे पास कर देंगे कि तुम ही भगवान हो तब हम मानेंगे कि हाँ, तुम भगवान हो।''

भगवान बोले : ''ठीक है... चलो।''

फिर वे सज्जन बोले :

''ऐसे नहीं... ऐसे चलोगे और रास्ते में कहीं धोखा देकर भाग गये तो ? मैं गुरुजी के सामने झूठा पड़ूँगा। इसलिए ऐसे नहीं... मैं तुम्हें कान पकड़कर ले चलूँगा।''

भगवान बोले : ''ठीक है।''

अब वे सज्जन गुरुजी के पास बकरा भगवान को उनका कान पकड़कर ले गये और बोले :

''गुरुजी ! देखिये, यह भगवान है कि नहीं ?''

गुरुजी तो हक्के-बक्के हो गये कि हमने तो चिढ़कर बताया था और ये सच मान बैठे !

अब वे सज्जन बकरे भगवान से बोले :

''अब बोलो, चुप क्यों हो ? वहाँ तो बड़ा सुन्दर रूप दिखाया था, बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे और अब यहाँ चुप हो ? अब बोलो कि मैं भगवान हूँ और दिखाओ भगवान बनकर।''

फिर भगवान ने उनको भगवान बनकर दर्शन दिया।

...तो ये गुरु लोग जो होते हैं, वे किसीको शिव के रूप में भगवान देते हैं, किसीको नारायण के रूप में भगवान देते हैं। सिर्फ उपदेश करनेवाले का नाम 'गुरु' नहीं होता है। गुरु तो वे हैं, जो तुमको गुरु बना दें और तुम लोगों को भगवान का दर्शन करा सकें। गुरु की महिमा अद्भुत है !

*

[एकादशी-माहात्म्य : रमा एकादशी ४ नवम्बर '९९]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''जनार्दन ! मुझ पर आपका स्नेह है, अतः कृपा करके बताइये कि कार्तिक के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! कार्तिक के कृष्ण पक्ष में 'रमा' नाम की विख्यात एवं परम कल्याणमयी एकादशी होती है। यह परम उत्तम है और बड़े-बड़े पापों को हरनेवाली है।''

पूर्वकाल में मुचुकुन्द नाम से विख्यात एक राजा हो चुके हैं, जो भगवान श्रीविष्णु के भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। अपने राज्य पर निष्कण्टक शासन करनेवाले उन राजा के यहाँ नदियों में श्रेष्ठ 'चन्द्रभागा' कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। राजा ने चन्द्रसेन कुमार शोभन के साथ उसका विवाह कर दिया। एक बार शोभन दशमी के दिन अपने ससुर के घर आये और उसी दिन समूचे नगर में पूर्ववत् ढिंढोरा पिटवाया गया कि : 'एकादशी के दिन कोई भी भोजन न करे।' इसे सुनकर शोभन ने अपनी प्यारी पत्नी चन्द्रभागा से कहा : ''प्रिये ! अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये, इसकी शिक्षा दो।''

चन्द्रभागा बोली : ''प्रभो ! मेरे पिता के घर पर एकादशी के दिन मनुष्य तो क्या कोई पालतू पशु आदि भी भोजन नहीं कर सकते। प्राणनाथ ! यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। इस प्रकार मन में विचार करके अपने चित्त को दृढ़ कीजिये।''

शोभन ने कहा : ''प्रिये ! तुम्हारा कहना सत्य है। मैं भी उपवास करूँगा। दैव का जैसा विधान है, वैसा ही होगा।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके शोभन ने व्रत के नियम का पालन किया किन्तु सूर्योदय होते-होते उनका प्राणान्त हो गया। राजा मुचुकुन्द ने शोभन का राजोचित दाह-संस्कार कराया। चन्द्रभागा भी पति का पारलौकिक कर्म करके पिता के ही घर पर रहने लगी।

नृपश्रेष्ठ ! उधर शोभन इस व्रत के प्रभाव से मन्दराचल के शिखर पर बसे हुए परम रमणीय देवपुर को प्राप्त हुए। वहाँ शोभन द्वितीय कुबेर की भाँति शोभा पाने लगे। एक बार राजा मुचुकुन्द के नगरवासी विख्यात ब्राह्मण सोमशर्मा तीर्थयात्रा के

प्रसंग से घूमते हुए मन्दराचल पर्वत पर गये जहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये। राजा के दामाद को पहचानकर वे उनके समीप गये। शोभन भी उस समय द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा को आया हुआ देखकर शीघ्र ही आसन से उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। फिर क्रमशः अपने श्वसुर राजा मुचुकुन्द का, प्रिय पत्नी चन्द्रभागा का तथा समस्त नगर का कुशलक्षेम पूछा।''

सोमशर्मा ने कहा : ''राजन्! वहाँ सब कुशल हैं। आश्चर्य है! ऐसा सुन्दर और विचित्र नगर तो कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। बताओ तो सही, आपको इस नगर की प्राप्ति कैसे हुई?''

शोभन बोले : ''द्विजेन्द्र! कार्तिक के कृष्ण पक्ष में जो 'रमा' नाम की एकादशी होती है, उसीका व्रत करने से मुझे ऐसे नगर की प्राप्ति हुई है। ब्रह्मन्! मैंने श्रद्धाहीन होकर इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया था, इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि यह नगर स्थायी नहीं है। आप मुचुकुन्द की सुन्दरी कन्या चन्द्रभागा से यह सारा वृत्तान्त कहियेगा।''

शोभन की बात सुनकर ब्राह्मण मुचुकुन्दपुर में गये और वहाँ चन्द्रभागा के सामने उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सोमशर्मा बोले : ''शुभे! मैंने तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा। इन्द्रपुरी के समान उनके दुर्द्धर्ष नगर का भी अवलोकन किया। किन्तु वह नगर अस्थिर है। तुम उसको स्थिर बनाओ।''

चन्द्रभागा ने कहा : ''ब्रह्मर्षे! मेरे मन में पति के दर्शन की लालसा लगी हुई है। आप मुझे वहाँ ले चलिये। मैं अपने व्रत के पुण्य से उस नगर को स्थिर बनाऊँगी।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''राजन्! चन्द्रभागा की बात सुनकर सोमशर्मा उसे साथ ले मन्दराचल पर्वत के निकट वामदेव मुनि के आश्रम पर गये। वहाँ ऋषि के मंत्र की शक्ति तथा एकादशी-सेवन के प्रभाव से चन्द्रभागा का शरीर दिव्य हो गया तथा उसने दिव्य गति प्राप्त कर ली। इसके बाद वह पति के समीप गयी। अपनी प्रिय पत्नी को आयी हुई देखकर शोभन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे बुलाकर अपने वाम भाग में सिंहासन पर बिठाया। तदनन्तर चन्द्रभागा ने अपने प्रियतम से यह प्रिय वचन कहा : 'नाथ! मैं हित की बात कहती हूँ, सुनिये। जब मैं आठ वर्ष से अधिक उम्र की हो गयी, तब से लेकर आज तक मेरे द्वारा किये हुए एकादशी व्रत से जो पुण्य संचित हुआ है, उसके प्रभाव से यह नगर कल्प के अन्त तक स्थिर रहेगा तथा सब प्रकार के मनोवांछित वैभव से समृद्धिशाली रहेगा।'

नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार 'रमा' व्रत के प्रभाव से चन्द्रभागा दिव्य भोग, दिव्य रूप और दिव्य आभरणों से विभूषित हो अपने पति के साथ मन्दराचल के शिखर पर विहार करती है। राजन्! मैंने तुम्हारे समक्ष 'रमा' नामक एकादशी का वर्णन किया है। यह चिन्तामणि तथा कामधेनु के समान सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है।''

साक्षात् ईश्वर आपके स्वरूप में मेरे सामने हैं

दिनांक : २६-७-९९

परम श्रद्धेय बापूजी,

शत-शत नमन एवं चरण वंदना!

गुरु की तलाश की कामना करते हुए ४४ वर्ष की अवस्था में पहुँच गया हूँ। बड़े-बड़े संतों व शंकराचार्यों के सान्निध्य में रहा, अच्छे विचार जाने लेकिन जिन गुरु की कल्पना हृदय में थी, उनका साक्षात्कार नहीं हुआ। मन में निश्चय था कि जब तक दिल व दिमाग को प्रभावित करनेवाले सत्पुरुष के दर्शन नहीं पा लूँगा, अपनी खोज जारी रखूँगा।

पिछले दो-तीन महीने से मेरे जीवन में अचानक आश्चर्यजनक बदलाव आया। मांस-मदिरा व प्याज आदि खाने-पीने का मैं शौकीन था लेकिन स्वतः ही इनके प्रति अरुचि हो गई और पूरी तरह शाकाहारी हो गया। काम-इच्छा शांत होकर ईश्वर-भक्ति में मन रमने लगा। अचानक ज्योतिष का ज्ञान होने लगा तथा फलित को लोगों ने ठीक बताया। इन सबके पीछे सिर्फ एक वजह जो मुझे जान पड़ी वह है जी. टी. वी. पर आपके प्रवचनों को सुनना।

बापू! मैं झूठ नहीं बोलता हूँ। एक बात जब तक आपसे नहीं कह लूँगा, मन शांत नहीं होगा। मैं पत्रकारिता में हूँ। कुछ साथी पत्रकारों ने आपके विषय में उल्टे-सीधे प्रसंग सुनाये थे। मेरे मन में भी वही धारणा आपके प्रति थी क्योंकि न तो मैंने आपको देखा था और न ही सुना था। टी. वी. पर एक दिन आपको सुना तो अचानक

जिज्ञासा हुई। तबसे बराबर आपको सुन रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे साक्षात् ईश्वर आपके स्वरूप में मेरे सामने हैं। माँ सरस्वती का अद्भुत माधुर्य आपकी वाणी से मिलता है। आपके उपदेश तो सचमुच सब संतों से ऊपर हैं। प्रवचनों के दौरान आप द्वारा बताई गई यौगिक क्रियाएँ अद्भुत हैं !

पत्र लिखने का मंतव्य लेखनी के माध्यम से आपको गुरु के रूप में प्रणाम करना है। कृपया मेरी भावना को समझते हुए मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

गुरु-उपासक... *- डॉ. नरेश त्यागी*

ए-बी, सजेन्द्र नगर, मेरठ (उ. प्र.).

*

'बापू' : सत्साहित्य के झरोखे से

प्राणिमात्र को 'ईश्वर की ओर' अभिमुख कर 'जीते-जी मुक्ति' दिलानेवाले, 'आत्मयोग', 'परम तप', 'जीवन रसायन', 'सहज साधना', 'पुरुषार्थ परम देव', 'गीता प्रसाद' तथा ऋषि-मुनियों के दृष्टांतों और अपनी 'योगलीला' द्वारा 'मन को सीख' देकर 'समता साम्राज्य' के सिंहासन पर आरूढ़ कर हमारे अन्तस का 'सामर्थ्य स्रोत' बढ़ाने, 'निश्चिन्त जीवन' जीने तथा 'जीवन विकास' की युक्तियाँ बतानेवाले ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मलीन, सद्गुरु स्वामी श्री लीलाशाहजी द्वारा प्रदत्त 'सत्संग सुमन' के 'जीवन सौरभ' द्वारा शरीर तो क्या, आत्मा तक को महकानेवाले, युवापीढ़ी के पथ-प्रदर्शक बन उनको 'यौवन सुरक्षा' की युक्तियाँ बताकर, 'नशे से सावधान' करनेवाले, 'मधुर व्यवहार' की महिमा तथा 'निर्भयनाद' की अनुभूति कराकर 'अलख की ओर' ले जानेवाले, हम सबकी 'योगयात्रा' की राह में आनेवाली हर रात्रि को अपने वचनामृत की शीतल आभा से 'व्यास पूर्णिमा' बनानेवाले संतशिरोमणि, जन-जन के लोक-लाड़ले, विश्वसंत परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री आसारामजी बापू को नूतन वर्ष के मंगल प्रभात में कोटि-कोटि वंदन...

- सुरेन्द्र शर्मा

रेलवे रोड, गाजियाबाद।

...और 'ऑपरेशन' की जरूरत न पड़ी

मई, १९९७ के दूसरे सप्ताह में मेरी माताजी को दस्त के साथ खून गिरने लगा। दिन में दस-बारह बार शौच के लिये जाना पड़ता था। उसमें बड़ी पीड़ा होती थी। मैंने अपने मित्र सर्जन डॉ. नरेशभाई अरोरा को इस बारे में बताया। उन्होंने 'चेक अप' के बाद दवा लिखकर दी एवं कहा : ''यदि इस दवा से भी फर्क न पड़े तो आगामी सप्ताह में 'Anal Fissure' का ऑपरेशन करवाना पड़ेगा।'

मेरी माताजी ने दो दिन दवा ली किन्तु कोई फर्क न पड़ा। तीसरे दिन गुरुवार था। बीमारी में कोई फर्क नहीं था, फिर भी माताजी ने कहा कि : ''आज तो मुझे आश्रम जाना है और पूजा करनी है।'' हम सबने मना किया कि ऐसी स्थिति में आपको आश्रम में तकलीफ होगी। लेकिन वे बोलीं : ''कोई बात नहीं। मुझे श्रद्धा है।''

माताजी शाम को आश्रम गयीं। वहाँ वटवृक्ष की परिक्रमा करके मनौती मानी एवं रात्रि को घर वापस आ गयीं। वहीं चमत्कार हुआ ! उनके खूनी दस्त बंद हो गये एवं दूसरे दिन तो दर्द भी गायब हो गया।

मैं खुद डाक्टर हूँ इसलिए मुझे ज्यादा आश्चर्य हुआ ! मैं माताजी को लेकर पुनः अपने मित्र सर्जन के पास गया एवं उन्हें सारी घटना बतायी। वे भी नहीं माने और आश्चर्यचकित हो उठे ! अब माताजी को कोई तकलीफ न थी, यह हकीकत थी। अतः किस प्रमाण की जरूरत थी ? यह सचमुच पूज्यश्री की कृपा का ही चमत्कार है। आज डेढ़ वर्ष के बाद

भी उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

हम सभी पर पूज्यश्री की बड़ी कृपा है और हम सभी को आपश्री में पूरी श्रद्धा है कि आप हमारे जीवन को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में खूब मदद करेंगे ताकि हम समाज के लिए कुछ अच्छा कर सकें।

– डॉ. बंकिम एन. शाह
सूरत (गुजरात).

*

'बड़ बादशाह' की कृपा से स्थायी नौकरी मिली

हम १५ कर्मचारी पिछले १० वर्षों से यहाँ की ग्राम पंचायत में रोजीदार के रूप में काम कर रहे थे। हमारा केस कोर्ट में चलने पर फैसला हमारे पक्ष में आया किन्तु यहाँ के सत्ताधीश हमें स्थायी नहीं कर रहे थे।

हम सब कई बार राजकोट जा चुके थे। एक बार राजकोट जाने पर पूज्य गुरुदेव द्वारा मुझे संकेत मिला : 'सभी कर्मचारियों को लेकर राजकोट के बड़ बादशाह की परिक्रमा करके मनौती मानूँ।' मैंने अपने सभी सह-कर्मचारियों से यह बात की। हम सब राजकोट के आश्रम में गये। हम सभी ने नौकरी में स्थायी होने का संकल्प करके बड़ बादशाह की परिक्रमा की।

उसके बाद तो संत-भगवंत की ऐसी कृपावृष्टि हुई कि हमारे यहाँ के सरपंच भी आश्रम में आये एवं उन्होंने राजकोट के कोर्ट में साथ में आकर शपथपत्र लिखा दिया : ''तुम सब १-९-१९९८ से स्थायी कर्मचारी हो। आगामी माह से मैं तुम लोगों को कर्मचारी का वेतन दूँगा।''

इस प्रकार अभी हमें स्थायी कर्मचारी का वेतन मिलने लगा है। यह भगवद्स्वरूप संतों और भगवान की कृपा नहीं तो और क्या है ?

पहले हम साधु-संतों को मानते नहीं थे किन्तु आज हम अपने इष्टदेव, गुरुदेव के रूप में पूज्यश्री को मानते हैं। *– रामजी करसनभाई अलाणी*
बींछिया, राजकोट (गुजरात).

अमृतफल - जामफल - अमरूद

अमरूद या जामफल शीतकाल में पैदा होनेवाला, सस्ता और गुणकारी फल है जो सारे भारत में पाया जाता है। संस्कृत में इसे 'अमृतफल' भी कहा गया है।

आयुर्वेद के मतानुसार पका हुआ अमरूद स्वाद में खट-मीठा, कसैला, गुण में ठण्डा, पचने में भारी, कफ तथा वीर्यवर्धक, रुचिकारक, पित्तदोषनाशक, वातदोषनाशक एवं हृदय के लिए हितकर है। अमरूद पागलपन, भ्रम, मूर्च्छा, कृमि, तृषा, शोष, श्रम, विषम ज्वर (मलेरिया) तथा जलननाशक है। गर्मी के तमाम रोगों में जामफल खाना हितकारी है। यह शक्तिदायक, सत्त्वगुणी एवं बुद्धिवर्धक है अतः बुद्धिजीवियों के लिए हितकर है। भोजन के १-२ घण्टों के बाद इसे खाने से कब्ज, अफारा आदि की शिकायतें दूर होती हैं। सुबह खाली पेट नाश्ते में अमरूद खाना भी लाभदायक है।

विशेष : अधिक अमरूद खाने से वायु, दस्त एवं ज्वर की उत्पत्ति होती है, मंदाग्नि एवं सर्दी भी हो जाती है। जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, उन्हें अमरूद कम खाने चाहिए।

अमरूद खाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि इसके बीज ठीक से चबाये बिना पेट में न जायें। जामफल को या तो खूब अच्छी तरह चबाकर निगलें या फिर इसके बीज अलग करके केवल गुदा ही खायें। इसका साबुत बीज यदि आंत्रपुच्छ (अपेण्डिक्स) में चला जाय तो फिर बाहर नहीं निकल पाता जिससे प्रायः 'अपेण्डिसाइटिस' होने की संभावना रहती है।

खाने के लिए पके हुए जामफल का ही प्रयोग करें। कच्चे जामफल का उपयोग सब्जी के रूप में किया जा

सकता है। दूध एवं जामफल खाने के बीच में २-३ घण्टों का अंतर अवश्य रखें।

अमरूद के औषधि-प्रयोग

१. सर्दी-जुकाम : जुकाम होने पर एक जामफल का गूदा बिना बीज के खाकर एक गिलास पानी पी लें। दिन में ऐसा २-३ बार करें। पानी पीते समय नाक से साँस न लें और न छोड़ें। नाक बन्द करके पानी पियें और मुँह से ही साँस बाहर फेंकें। इससे नाक बहने लगेगा। नाक बहना शुरू होते ही जामफल खाना बन्द कर दें। १-२ दिन में जुकाम खूब झड़ जाए तब रात को सोते समय ५० ग्राम गुड़ खाकर बिना पानी पिये सिर्फ़ कुल्ले करके सो जायें। जुकाम ठीक हो जायेगा।

२. खाँसी : एक पूरा जामफल आग की गरम राख में दबाकर सेक लें। २-३ दिन तक प्रतिदिन ऐसा एक जामफल खाने से कफ ढीला हो जाता है, निकल जाता है और खाँसी में आराम हो जाता है। चाय की पत्ती की जगह जामफल के पत्ते पानी से धोकर साफ कर लें और फिर पानी में उबालें। जब उबलने लगे तब उसमें दूध व शक्कर डाल दें, फिर उसे छान लें। इसे पीने से खाँसी में आराम होता है। इसके बीजों को 'बिहीदाना' कहते हैं। इन बीजों को सुखाकर पीस लें और थोड़ी मात्रा में शहद के साथ सुबह-शाम चाटें। इससे खाँसी ठीक हो जाएगी। इस दौरान तेल एवं खटाई का सेवन न करें।

३. सूखी खाँसी : सूखी खाँसी में पके हुए जामफल को खूब चबा-चबाकर खाने से लाभ होता है।

४. कब्ज़ : पर्याप्त मात्रा में जामफल खाने से मल सूखा और कठोर नहीं हो पाता और सरलतापूर्वक शौच हो जाने से कब्ज नहीं रहता। जामफल काटने के बाद उस पर सोंठ, काली मिर्च और सेंधा नमक बुरबुरा लें अथवा संतकृपा चूर्ण डाल लें। फिर इसे खाने से स्वाद बढ़ता है और पेट के अफारा, गैस और अपच दूर होते हैं। इसे सुबह निराहार खाना चाहिए या भोजन के साथ खाना चाहिए।

५. मुख रोग : इसके कोमल हरे ताज़े पत्ते चबाने से मुँह के छाले नरम पड़ते हैं, मसूढ़े व दाँत मज़बूत होते हैं, मुँह की दुर्गन्ध का नाश होता है। पत्ते चबाने के बाद इसका रस थोड़ी देर मुँह में रखकर इधर-उधर घुमाते रहें, फिर थूक दें। पत्तों को उबालकर इस पानी से कुल्ले व गरारे करने पर दाँत का दर्द दूर होता है एवं मसूढ़ों की सूजन व पीड़ा नष्ट होती है।

६. शिशु रोग : जामफल के पिसे हुए पत्तों की लुगदी बनाकर बच्चों की गुदा के मुख पर रखकर बाँधने से उनका गुदाभ्रंश यानी कांच निकलने का रोग भी ठीक होता है। बच्चों को पतले दस्त बार-बार लगते हों तो इसके कोमल व ताज़े पत्तों एवं जड़ की छाल को उबालकर काढ़ा बना लें और २-२ चम्मच सुबह-शाम पिलायें। इससे पुराना अतिसार भी ठीक हो जाता है। इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर पिलाने से उलटी व दस्त होना बन्द हो जाता है।

७. सूर्यावर्त : सुबह सूर्योदय से सिरदर्द शुरू हो, दोपहर में तीव्र पीड़ा हो एवं सूर्यास्त हो तब तक सिरदर्द मिट जाये- इस रोग को सूर्यावर्त कहते हैं। इस रोग में रोज सुबह पके हुए जामफल खाने एवं कच्चे जामफल को पत्थर पर पानी के साथ घिसकर ललाट पर उसका लेप करने से लाभ होता है।

८. भाँग का नशा : २ से ४ पके हुए जामफल खाने से अथवा इसके पत्तों का ४०-५० मि.ली. रस पीने से भाँग का नशा उतर जाता है।

९. दाह-जलन : पके हुए जामफल पर मिश्री भुरभुराकर रोज सुबह एवं दोपहर में खाने से जलन कम होती है। यह प्रयोग वायु अथवा पित्तदोष से उत्पन्न शारीरिक दुर्बलता में भी लाभदायक है।

१०. पागलपन एवं मानसिक उत्तेजना : मानसिक उत्तेजना, अति क्रोध, पागलपन अथवा अति विषय-वासना से पीड़ित लोगों के लिए प्रतिदिन रात्रि को पानी में भिगोये हुए ३-४ पके जामफल सुबह खाली पेट खाना लाभदायक है। दोपहर के समय भी भोजन के २ घण्टे बाद जामफल खायें। इससे मस्तिष्क की उत्तेजना का शमन होता है एवं मानसिक शांति मिलती है।

११. स्वप्नदोष : कब्जियत अथवा शरीर की गर्मी के कारण होनेवाले स्वप्नदोष में सुबह-दोपहर जामफल का सेवन लाभप्रद है।

१२. खूनी दस्त (रक्तातिसार) : जामफल का मुरब्बा या पके हुए या कच्चे जामफल की सब्जी का

सेवन करने से खूनी दस्त में लाभ होता है।

१३. मलेरिया ज्वर : तीसरे अथवा चौथे दिन आनेवाले विषम ज्वर (मलेरिया) में प्रतिदिन नियमित रूप से सीमित मात्रा में जामफल का सेवन लाभदायक है।

*

सीताफल

अगस्त से नवम्बर के आसपास अर्थात् आश्विन से माघ मास के बीच आनेवाला सीताफल एक स्वादिष्ट फल है।

आयुर्वेद के मतानुसार सीताफल शीतल, पित्तशामक, कफ एवं वीर्यवर्धक, तृषाशामक, पौष्टिक, तृप्तिकर्त्ता, मांस एवं रक्तवर्धक, उलटी बंद करनेवाला, बलवर्धक, वातदोषशामक एवं हृदय के लिए हितकर है।

आधुनिक विज्ञान के मतानुसार सीताफल में कैल्शियम, लौह तत्त्व, फास्फोरस, विटामिन थायमिन, रिवोफ्लोवीन एवं विटामिन 'सी' वगैरह अच्छे प्रमाण में होते हैं।

जिन लोगों की प्रकृति गर्म अर्थात् पित्तप्रधान है उनके लिए सीताफल अमृत के समान गुणकारी है।

जिन लोगों का हृदय कमजोर हो, हृदय का स्पंदन खूब ज्यादा हो, घबराहट होती हो, उच्च रक्तचाप हो ऐसे रोगियों के लिए भी सीताफल का सेवन लाभप्रद है। ऐसे रोगी सीताफल की ऋतु में उसका नियमित सेवन करें तो उनका हृदय मजबूत एवं क्रियाशील बनता है।

जिन्हें खूब भूख लगती हो, आहार लेने के उपरांत भी भूख शांत न होती हो- ऐसे 'भस्मक' रोग में भी सीताफल का सेवन लाभदायक है।

विशेष : सीताफल गुण में अत्यधिक ठण्डा होने के कारण ज्यादा खाने से सर्दी होती है। सीताफल ज्यादा खाने से कइयों को ठंड लगकर बुखार आने लगता है, अतः जिनकी कफ-सर्दी की तासीर हो वे सीताफल का सेवन न करें। जिनकी पाचनशक्ति मंद हो, बैठालु जीवन हो, उन्हें सीताफल का सेवन बहुत सोच-समझकर सावधानी से करना चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले नुकसान होता है।

*

जयपुर (राज.) १६ से १९ सितम्बर तक चार दिवसीय प्रवचन के दौरान गुलाबी नगरी के श्रोताओं में सत्संग के प्रति बड़ी तल्लीनता देखने को मिली। एक बार बैठ गया श्रोता अंत तक मंत्रमुग्ध होकर सत्संग-रस का पान करता रहा। उनकी आँखों में अपने संतश्री के प्रति श्रद्धा और कानों में संतश्री के अमृतमय प्रवचन की गूँज साफ अनुभव की जा रही थी। राजापार्क का आदर्शनगर क्षेत्र प्रवचन की गूँज से बँधा रहा। गुलाबी शहर में ब्रह्मनिष्ठ बापू के सत्संग प्रवचन समारोह ने नगर का माहौल धर्ममय बना दिया था। राजापार्क के आदर्शनगर इलाके में सुबह-शाम प्रवचन का श्रवण-लाभ लेनेवालों का जैसे सैलाब-सा उमड़ पड़ता था।

कैथल (हरियाणा) : हरियाणा का कैथल शहर २७ से २९ सितम्बर '९९ तक पूज्यश्री की अमृतवाणीरूपी वर्षा से सराबोर रहा। ज्ञान-भक्तियोग की अमृतवर्षा से यहाँ के लोगों में अध्यात्म के प्रति विशेष उत्साह व रुझान स्पष्ट रूप से देखी गई।

भगवन्नाम-महिमा का उल्लेख करते हुए पूज्यश्री ने कहा कि :

''कलियुग में अधिकांश लोग उपद्रवी, एक-दूसरे को पतन की राह पर ढकेलनेवाले, अल्पायु, अल्पमति और घटिया स्वास्थ्य के हो जाते हैं। लेकिन कलियुग की यह बड़ी भारी महिमा है कि हरि के गुणगान से घोर-से-घोर पापी भी भवबंधन से सहज ही पार हो सकता है। 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा...' वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है।''

कुरुक्षेत्र (हरियाणा) : हरियाणा की यह देवभूमि वही है जिसके उल्लेख से ही 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का शुभारंभ होता है। गीता के मर्मज्ञ पूज्यपाद बापू ने ३० सितम्बर से ३ अक्तूबर '९९ तक चलनेवाले गीता-भागवत सत्संग समारोह की शुरूआत **'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'** शब्दों के उच्चारण से की।

हजारों वर्ष पूर्व घटित हुए धर्मयुद्ध की अनुपम झाँकी पूज्यश्री की अमृतवाणी से सुनने पर उन दृश्यों का प्रतिबिंब मानसिक रूप से दृष्टिगोचर होने लगता था, मनःपटल पर अंकित होने लगता था। चारों ओर जल से आप्लावित विशाल ब्रह्मसरोवर ! मध्य में स्थित पुरुषोत्तम बाग ! वहाँ लाखों श्रद्धालुओं के बैठने के लिए मण्डप ! सुहावना, मनोहारी प्राकृतिक वातावरण ! संध्या का समय ! पूज्यश्री **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** के महा मंत्र में भक्तों को तल्लीन कराते हुए... अहा ! उस क्षण के स्मरणमात्र से हृदय गद्-

गद् हो उठता है । उसकी वास्तविक झाँकी शब्दों में व्यक्त करना असंभव-सा लगता है । कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र की संज्ञा देते हुए पूज्य बापू ने कुरुक्षेत्र की भूमि को ध्यान-उपासना के लिए उपयुक्त बताया । पूज्य बापू ने कहा :

''युद्ध के मैदान में अर्जुन तत्त्वज्ञान का अनुभव कर सकता है, राजा जनक घोड़े की रकाब में पैर डालते हुए परमात्मा का अनुभव कर सकते हैं, परीक्षित सात दिन में मुक्ति का अनुभव कर सकते हैं तो आप भी इस संसाररूपी रणक्षेत्र में शाश्वत् आनंद का, मुक्ति का अनुभव कर जीते-जी मुक्तात्मा हो सकते हो । इसके लिए अपने हृदय में केवल दृढ़ माँग रख दो, फिर आपके दीदार करनेवाले की भी मनोकामना पूरी होगी... ऐसे आप हो सकते हो ।''

कुरुक्षेत्र की इस तीर्थभूमि में अमृतवाणी से अभिभूत जनसैलाब को देखते हुए पूज्यपाद बापू ने कहा : **''जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सभी के लिए है, ब्रह्मसरोवर सभी के लिए है उसी प्रकार सत्संग-सरोवर सभी के लिए है ।''**

२ अक्तूबर का प्रथम सत्र विद्यार्थियों के लिए था जिसमें पूज्यश्री ने बच्चों को उज्ज्वल जीवन जीने के मार्ग बताये, स्वास्थ्य व यादशक्ति बढ़ाने के यौगिक प्रयोग कराये । सपरिवार तीनों दिन तक सत्संग में सराबोर रहनेवाले हरियाणा के पूर्व शिक्षामंत्री श्री रामविलास शर्मा भी गद्-गद् हो उठे । ३ अक्तूबर को पूर्णाहुति के अवसर पर उन्होंने पूज्यश्री का अभिनंदन किया व पुनः आगमन का आमंत्रण दिया । उन्होंने कहा : **'' बापू हिन्दुस्तान की प्रतिभा हैं । ऐसा लगता है जैसे हिन्दुस्तान पुनः उत्थान की अँगड़ाई लेने जा रहा है... मैं आपके श्रीचरणों में बारंबार प्रणाम करता हूँ ।''**

देशभर के शिक्षा मंत्री देश के बच्चों के लिए ऐसे विद्यार्थी शिविरों का आयोजन करवायें तो कितना बढ़िया रहे ! देशवासियों और शिक्षा मंत्रियों का यह परम कर्त्तव्य है कि ऐसे आत्मस्पर्शी सत्पुरुषों के सान्निध्य में वे विद्यार्थी उत्थान शिविर आयोजित करवायें ।

गुड़गाँव (हरियाणा) : ५ और ६ सितम्बर '९९. गुड़गाँव समिति के भाई वर्षों से पूज्यश्री के सत्संग के लिए लालायित थे । पूज्यश्री के लगातार कार्यक्रमों के बीच मिलनेवाले दो-तीन दिन के एकान्तवास को भी गुड़गाँववालों ने अपनी तीव्र श्रद्धा और पुरुषार्थ से नगरजनों की सेवा में खींच ही लिया । तीन-चार दिन पहले ही सत्संग की तारीख निश्चित करवाकर भव्य आयोजन करके वे ऐसे सफल हुए कि दशहरा मैदान खचाखच भर गया । कैसे रहे होंगे गुड़गाँव के प्यासे सत्संग-प्रेमी और कैसे रहे होंगे आयोजन करनेवाले उत्साही ! कार्यक्रम से केवल तीन-चार दिन पहले वे संत-सेवक अनुनय-विनय करके एकान्त के दिनों में से भी खींच ले गये अपने प्यारे संत को ।

कानपुर (उ. प्र.) : ८ से ११ अक्तूबर '९९ तक यहाँ चार दिवसीय ज्ञान-भक्ति-योगवर्षा कार्यक्रम व पूज्यश्री का आत्म-साक्षात्कार महोत्सव संपन्न हुआ । लाखों व्यक्तियों के बैठने की क्षमतावाला विशाल मंडप अत्यंत लघु पड़ रहा था । हजारों सत्संग-प्रेमी दूर-दूर खड़े रहकर भी मंत्रमुग्ध होकर घण्टों प्रवचन-श्रवण में तल्लीन रहे । मुसलमान श्रोता भी काफी थे और स्थानीय विधायक मोहम्मद मुश्ताक अली भी पूज्यश्री के सत्संग में सराबोर हुए ।

इस बार वर्षों तक इन्तजार करनेवाले भक्त तो आये ही किन्तु अन्य श्रोताओं का जनसैलाब भी इतना था कि वह महाकुंभ की याद दे रहा था । साथ ही अभूतपूर्व भीड़ में अभूतपूर्व शांति का, यौगिक वाणी का चमत्कार भी सहज में दृष्टिगोचर होता था ।

अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
२१ से २३ अक्तूबर '९९	आगरा	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी का	–	बलकेश्वर कॉलोनी ग्राउण्ड, आगरा ।	(०५६२) ३७१७७०, ३७२०१६, २१३३५५.
२४ से २६ अक्तूबर '९९	आगरा आश्रम	शरदपूर्णिमा शिविर	आम सत्संग रोज शाम ४ से ६	संत श्री आसारामजी आश्रम, आगरा-मथुरा रोड, आगरा ।	(०५६२) ३७१७७०, ३७२०१६, २१३३५५.
२७ अक्तूबर	सरमथुरा आश्रम	सत्संग समारोह	सुबह १० से १२ शाम ३ से ५	संत श्री आसारामजी आश्रम, महाकालेश्वर रोड, सरमथुरा, जि. धौलपुर (राज.).	(०५६४६) ३२८०२६
२८ से ३१ अक्तूबर '९९	ग्वालियर आश्रम	ध्यान योग शिविर	आम सत्संग रोज शाम ३-३० से ५-३०	संत श्री आसारामजी आश्रम, शिवपुरी रोड, केदारपुर कोठी, ग्वालियर ।	(०७५१) ३३५८८८
१८ शाम से २१ नवम्बर '९९	गाँधीनगर (अमदावाद)	विद्यार्थी उत्थान शिविर	-	'सरस्वती धाम', पथिकाश्रम एस. टी. डिपो के पीछे, 'च-३' के पास, गाँधीनगर ।	(०२७१२) ३१३२१, ३१३२२, २८४१६.

दीपावली महोत्सव : अमदावाद आश्रम में । **पूर्णिमा दर्शन : २२ नवम्बर '९९ अमदावाद आश्रम में ।**

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MO

DELHI REGD. NO. DL-11513/99 PSO LIC. NO.-U(C) 232/99
R.N.I. NO. 48873/91 W.P.P LIC. NO. 207 GAMC/1132.
MUMBAI, BYCULLA PSO LIC. NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02.

पूज्यश्री के सत्संग में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के उद्‌गार...

पूज्य बापूजी के भक्ति रस में डूबे हुए श्रोता भाई-बहनों ! मैं यहाँ पर पूज्य बापूजी का अभिनंदन करने आया हूँ। उनका आशीर्वचन सुनने आया हूँ, भाषण देने या बकबक करने नहीं आया हूँ। बकबक तो हम करते रहते हैं। बापूजी का जैसा प्रवचन है, कथा-अमृत है, उस तक पहुँचने के लिए बड़े परिश्रम करने पड़ते हैं। मैंने पहले उनका दर्शन पानीपत में किया था। वहीं पर रात को पानीपत में पुण्य-प्रवचन समाप्त होते ही बापूजी कुटीर में जा रहे थे, तब उन्होंने मुझे बुलाया। मैं भी उनके दर्शन और आशीर्वाद के लिए लालायित था। संत-महात्माओं के दर्शन तभी होते हैं, उनका सान्निध्य तभी मिलता है जब कोई पुण्य जागृत होता है।

इस जन्म में मैंने कोई पुण्य किया हो इसका मेरे पास कोई हिसाब तो नहीं है किन्तु जरूर यह पूर्वजन्म के पुण्यों का ही फल है जो बापूजी के दर्शन हुए। उस दिन बापूजी ने जो कहा, वह अभी तक मेरे हृदय-पटल पर अंकित है।

देशभर की परिक्रमा करते हुए जन-जन के मन में अच्छे संस्कार जगाना- यह एक ऐसा परम राष्ट्रीय कर्त्तव्य है, जिसने हमारे देश को आज तक जीवित रखा है और इसके बल पर हम उज्ज्वल भविष्य का सपना देख रहे हैं। उस सपने को साकार करने की शक्ति-भक्ति एकत्र कर रहे हैं।

पूज्य बापूजी सारे देश में भ्रमण करके जागरण का शंखनाद कर रहे हैं, सर्वधर्मसमभाव की शिक्षा दे रहे हैं, संस्कार दे रहे हैं तथा अच्छे और बुरे में भेद करना सिखा रहे हैं।

हमारी जो प्राचीन धरोहर थी और हम जिसे लगभग भूलने का पाप कर बैठे थे, उसको बापूजी फिर से हमारी आँखों में ज्ञान का अंजन लगाकर हमारे सामने रख रहे हैं। बापूजी ने कहा कि ईश्वर की कृपा से कण-कण में व्याप्त एक महान् शक्ति के प्रभाव से जो कुछ घटित होता है, उसकी छानबीन और उस पर अनुसंधान करना चाहिए।

शुद्ध अंतःकरण से निकली हुई प्रार्थना को प्रभु अस्वीकार नहीं करते, यह हमारा विश्वास होना चाहिए। यदि अस्वीकार हो तो प्रभु को दोष देने के बजाय यह सोचना चाहिए कि क्या हमारे अंतःकरण में उतनी शुद्धि है जितनी होनी चाहिए ? शुद्धि का काम राजनीति नहीं कर सकती, अशुद्धि का काम भले कर सकती है !

पूज्य बापूजी ने कहा कि जीवन के व्यापार में से थोड़ा समय निकालकर सत्संग में आना चाहिए। पूज्य बापूजी उज्जैन में थे तब मेरी जाने की बहुत इच्छा थी लेकिन कहते हैं न, कि दाने-दाने पर खानेवाले की मोहर होती है वैसे ही संत-दर्शन के लिए भी कोई मुहूर्त होता है। आज वह मुहूर्त आ गया है। यह मेरा क्षेत्र है। पूज्य बापूजी ने चुनाव जीतने का तरीका भी बता दिया है।

आज देश की दशा ठीक नहीं है। बापूजी का प्रवचन सुनकर बड़ा बल मिला है। हाल में हुए लोक सभा अधिवेशन के कारण थोड़ी-बहुत निराशा पैदा हुई थी किन्तु रात को लखनऊ में पुण्य प्रवचन सुनते ही वह भी आज दूर हो गई। बापूजी ने मानव जीवन के चरम लक्ष्य मुक्ति-शक्ति की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय, भक्ति के लिए समर्पण की भावना तथा ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का उल्लेख किया है। भक्ति में अहंकार का कोई स्थान नहीं है। ज्ञान अभिमान पैदा करता है। भक्ति में पूर्ण समर्पण होता है। १३ दिन के शासनकाल के बाद मैंने कहा : ''मेरा जो कुछ है तेरा है।'' यह तो बापूजी की कृपा है कि श्रोता को वक्ता बना दिया और वक्ता को नीचे से ऊपर चढ़ा दिया। जहाँ तक ऊपर चढ़ाया है वहाँ तक ऊपर बना रहूँ इसकी चिंता भी बापूजी को करनी पड़ेगी।

राजनीति की राह बड़ी रपटीली है। जब नेता गिरता है तो यह नहीं कहता कि मैं गिर गया बल्कि कहता है : ''हर हर गंगे।'' लेकिन बापूजी का प्रवचन सुनकर बड़ा आनंद आया। मैं लोक सभा का सदस्य होने के नाते अपनी ओर से एवं लखनऊ की जनता की ओर से बापूजी के चरणों में विनम्र होकर नमन करना चाहता हूँ।

उनका आशीर्वाद हमें मिलता रहे, उनके आशीर्वाद से प्रेरणा पाकर बल प्राप्त करके हम कर्त्तव्य के पथ पर निरन्तर चलते हुए परम वैभव को प्राप्त करें-यही प्रभु से प्रार्थना है।